

विचार एवं विचारधारा—यह मानना ही पड़ेगा कि बिना विचार के न तो किसी साहित्य की रचना हो सकती है एवं न ही किसी संस्था का निर्माण हो सकता है। समस्त ज्ञान-विज्ञान विचार की ही देन है। जब विचार व्यक्तिगत स्तर से ऊपर उठकर सामाजिक रूप लेने लगते हैं तो यही विचारधारा बन जाती है। 'मैं चला था जानिबे मंज़िल मगर; लोग आते गये और कारवां बनता गया'। इस प्रकार विचारधारा बहुत से लोगों के विचारों का समावेशी रूप होता है।

वर्तमान समय में हम जिन विचारों एवं विचारधारा से प्रभावित हुए हैं वे अधिकांश में पश्चिम से आये हैं। हमारा विकास का माडल, शिक्षा, टेक्नोलॉजी यहाँ तक की सम्पर्क-भाषा भी वहीं से ली गई है। कभी-कभी लगता है कि पश्चिम की यह आँधी हमारा अपना सब उड़ा तो नहीं देगी एवं हम कटी पतंग की तरह इधर-उधर भटकते रह जायेंगे। वैसे सभ्यता एवं संस्कृति प्रवाहमान होते हैं एवं उन्हें चिर पुरातन, चिर नवीन भी कहा जाता है। वह नये को आत्मसात करके भी अपने मूल तत्वों को नहीं खोती। हजारों वर्ष पुरानी हमारी संस्कृति भी नित्य नया रूप धारण करके भी शाश्वत बनी हुई है। इस झंझावात से भी यह और अधिक सुदृढ़ होकर निकलेगी ऐसा विश्वास हम सबको रखना चाहिए।

स्वयंसेवी संस्थाएँ एवं विकास—सामान्यतः विकास का अर्थ आधुनिकता की ओर प्रगति से लिया जाता है। इसका उद्देश्य राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा एवं स्वास्थ्य की सुविधाएँ उपलब्ध करना है। ये सुविधाएँ समाज के एक विशिष्ट वर्ग तक सीमित न रहकर निचले पायदान पर खड़े हुए व्यक्ति तक पहुँचनी चाहिए एवं उन्हें उन्नति के समान अवसर उपलब्ध होने चाहिए।

किन्तु विकास की यह प्रक्रिया केवल भौतिक आवश्यकताओं तक सीमित न रहकर बौद्धिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में पहुँचनी आवश्यक है। पश्चिम में भौतिक विकास तो भरपूर हुआ है किन्तु आध्यात्मिक विकास कहीं खो गया है। अतः वहाँ भी आवश्यकता महसूस की जा रही है कि इस विकास में कुछ और भी जुड़ना चाहिए था।

विकास का कार्य प्रायः ही सरकार के हवाले कर दिया जाता है। सरकारी एंजिनैरियाँ बहुत कुछ करती हैं किन्तु उनकी अपनी सीमाएँ हैं। सरकारी कार्य नियमों के बन्धनों से बंधा होता है। सरकारी कर्मचारी

अपनी जीविका के लिए कार्य करता है। उसमें परहित एवं जनहित की भावना नहीं होती। सरकारी मशीनरी भौतिक विकास भी पूर्ण रूप से नहीं कर पाती; बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास का तो वहाँ प्रश्न ही नहीं उठता।

यहीं से स्वयं सेवी संस्थाओं की भूमिका प्रारम्भ होती है। ये संस्थाएँ प्रायः ही कुछ व्यक्तियों के कठिन परिश्रम की उपज होती हैं। सरकारों को राजा का प्रतिनिधि एवं स्वयं सेवी संस्थाओं को जनता का प्रतिनिधि कहा जाता है। वे जमीन से जुड़ी होती हैं एवं उनके नियम-कानून लचीले होते हैं। इनकी उत्पत्ति, विकास एवं ये कितनी प्रकार की होती है इस संबंध में विस्तृत विवेचन अन्दर के पृष्ठों में मिलेगा। किन्तु समय के साथ स्वयं सेवी संस्थाओं में भी कुछ विकृतियाँ आ गई हैं। कुछ विद्वानों ने अपनी शोधों के आधार पर इन विकृतियों को निम्न प्रकार गिनाया है—

1. इन पर कुछ व्यक्तियों ने एकाधिकार स्थापित कर लिया है।
2. कुछ मामलों में ये सरकारी धन को हड़पने का साधन बन गई हैं।
3. एक ही प्रकार का कार्य, एक ही स्थान पर कई संस्थाएँ कर रही हैं एवं उनमें कोई तालमेल नहीं है।
4. पारदर्शिता का अभाव है।
5. किसी की कोई जवाबदेही नहीं है।

दूसरी ओर सरकारी सहायता प्राप्त करने वाली स्वयं सेवी संस्थाओं की शिकायतें भी कम नहीं हैं। उनका कहना है कि सरकार से सहायता प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। नियम अत्यंत पुराने एवं कठोर हैं। उनमें लचीलेपन का अभाव है। सरकारी अधिकारियों का रवैया काम में विलम्ब करने, रोड़े अटकाने एवं टकराने वाला रहता है। भ्रष्टाचार से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। वास्तविकता तो यही है कि सरकारी धन अपने लक्ष्य तक पहुँचते-पहुँचते आधा या उससे भी कम रह जाता है।

उपरोक्त सभी कारणों से स्वयंसेवी संस्थाओं को अधिक सक्षम बनाने के लिये विशेषज्ञों ने निम्न सुझाव दिये हैं—

1. ये संस्थाएँ जिन लोगों के लिये कार्य करती हैं उनसे अधिक से अधिक सम्पर्क बनाना चाहिये।
2. निर्धन वर्ग को निष्पक्ष रूप से लाभ पहुँचना चाहिए। इसमें जाति, सम्प्रदाय या राजनैतिक विचारधारा आड़े नहीं आनी चाहिए।
3. जन साधारण की आवश्यकताओं एवं दुख दर्द के प्रति इन्हें संवेदनशील होना चाहिए।

4. लाभार्थी कितना भी निर्धन या निर्बल क्यों न हो उसके प्रति सम्मान पूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए।
5. संस्था के संचालकों का जीवन सादा तथा व्यवहार इतना विनम्र होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति उन तक पहुँच सके।
6. कार्य प्रणाली इस प्रकार की हो जिससे विकास, प्रगति एवं सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा मिल सके।
7. विचारों एवं कार्यों में एक रूपता तथा ईमानदारी होनी चाहिए।
8. संस्था के लक्ष्यों के प्रति समर्पण एवं निष्ठा हो।
9. किये गये कार्यों का कुछ परिणाम दृष्टिगोचर होना चाहिए।
10. इन संस्थाओं को अपना कार्य क्षेत्र नगरों तक सीमित न रखकर ग्रामों में भी कार्य करना चाहिए क्योंकि अभी भी भारत की 70% आबादी गाँवों में ही रहती है।
11. अधिकांश स्वयं सेवी संस्थाएँ अपने को प्रायः ही भौतिक विकास के कार्यों तक ही सीमित रखती हैं। उन्हें सेवा के साथ ही संस्कारों के क्षेत्र में भी कार्य करना चाहिए। इससे मनुष्य का मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास भी होगा।

भारत विकास परिषद् उन गिनी चुनी राष्ट्र व्यापी संस्थाओं में से एक है जिन्होंने सेवा संस्कार दोनों ही क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर कार्य किया है एवं अब भी उस कार्य के विस्तार में लगे हुए हैं। परिषद् ने अब तक लगभग 120 प्रकल्प शिक्षा के क्षेत्र, में 380 चिकित्सा के क्षेत्र में तथा 100 से अधिक ऐसे स्थायी प्रकल्पों का निर्माण किया जो नियमित रूप से जन सेवा में कार्यरत हैं। 550 के लगभग कुछ अन्य प्रकार के प्रकल्प हैं जिनमें गर्मियों में जल सेवा से लेकर मेलों में खोये बच्चों की सहायता करना शामिल हैं।

परिषद् की सदस्यता वाले 45000 परिवार निष्ठा पूर्वक इन क्षेत्रों में रात दिन कार्य कर रहे हैं।

केवल वही व्यक्ति सबकी अपेक्षा उत्तम रूप से कार्य करता है, जो पूर्णतया निःस्वार्थी है, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्ति की और न ही किसी अन्य वस्तु की। - विवेकानंद



निष्काम होकर नित्य परिश्रम करने वालों की गोद में उत्सुक होकर सफलता विराजती है। - भारवि

Editor's Reflections

Samarpan

- **Commitment**
- **Surrendering Your Acts to God**
- **Shedding the Ego**



Samarpan literally means surrender. The hallmark of surrender is giving up of resistance. But surrender does not convey the full meaning of the word Samarpan. The dictionary meaning of surrender is to yield to power, control or possession under compulsion. But Samarpan conveys three meanings: Commitment, Surrendering one's acts to God and Shedding one's ego.

Commitment- Some people sincerely care about the work they undertake. They value their role in the organization in which they are working, care about its future and want to remain associated with it. They have a strong belief in the organization's goals and willingly put maximum efforts to achieve them.

Commitment is also essential for a person if he wants to be an effective leader. True commitment inspires and attracts people. It shows that the leader has conviction. People will believe if the leader believes in his cause. Some people want everything to be perfect before they are willing to commit themselves to anything. But commitment always precedes achievement.

Surrendering Your Acts to God –

Bhagwan Krishna Says in Gita:-

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

“Resign all duties and take refuge in me alone. Grieve not, for I shall absolve you from all sins” (18/66)

The other meaning of Samarpan is surrendering all your deeds to the Supreme Power.

Krishna advises Arjuna to fight to the best of his capacity and surrender the results to the Lord.

A believer in God completely gives up his own will and subjects his thoughts, ideas and deeds to the will and teachings of that higher Power.

Maharishi Raman says, "You must develop a feeling that I am helpless and only God is powerful. Except throwing on him completely there is no other means of safety for me". Thus you surrender all you deeds to God. This surrender should not be mechanical but must come from the depth of your heart. When this type of surrender occurs there does not remain any trace of sin or evil doing.

In spirituality and religion surrender means that a believer gives up his own will and subjects his thoughts, ideas and deeds to the will and teachings of Higher Power.

Shedding the Ego - *Aham* in Sanskrit and ego in Latin means 'I'. When a person becomes aware of 'I' as distinct from everything else in the world, the awareness is called *Ahamkara*. The feeling of *Ahamkara* is necessary so that a human being can look after himself. *Ahamkar* gives him the spirit of competition.

Ahamkara may give a feeling of arrogance as well as of a sense of belonging. This is called 'mamata' or 'mamkara'. 'mam' means mine. We say that this is my country, my village, my language. Mamta has its uses. Without mamta mother will not feed her child. The bond of mamta keeps the family together.

But in another form ego becomes arrogance and self conceit. An arrogant person looks down on others. Even well meant advice irritates him. Success goes to his head and in what he is instrumental in doing, he attributes it to 'his' abilities. He expects everybody to show respect to him and to nod his head in agreement with him.

Shedding ego is not easy. In our tradition we break coconuts in front of God. It symbolizes breaking our ego. Just as sweet water comes out of the broken coconut, so does joy emerges when ego is surrendered.

When doing *Sewa* we must treat it like worship. Our God is the human being who accepts our *sewa*. We must be happy doing *sewa* as a devotee is happy when God accepts his offerings.

Shedding ego is not easy, but can be achieved by constantly reminding oneself that the same self exists in all.

Holy Wisdom

तत्त्व ज्ञान

विनय स्वयं तप है और वह अभ्यान्तर तप होने से श्रेष्ठ धर्म होता है।

एक जैन सूक्ति

Humility is itself a penance and when
Internalised, it becomes the highest Dharma.

★ ★ ★ ★ ★

As fragrance abides in the flower
As the reflection is within the mirror
So does the Lord abide within you
Why search for him everywhere

Guru Nanak

★ ★ ★ ★ ★

Gandhiji said that the roots of violence in human
conduct may be found, when we have

Wealth without work
Pleasure without conscience
Knowledge without morality
Science without humanity
Worship without service, and
Politics without principles

**Purity, patience and perseverance are the three
essentials for success and above all love.**

स्वयंसेवी संस्थाएँ-उद्भव एवं विकास

- आर० के० श्रीवास्तव

मानव के अन्दर परोपकार की भावना ही स्वयंसेवी संस्थाओं की जनक है। परोपकार मानव की मूल प्रवृत्तियों में से एक है। प्राचीन काल से ही परोपकार का कार्य एक व्यक्ति, एक समूह तथा शासन की बागडोर संभालने वाले राजा द्वारा किया जाता था। ऐसे कार्य सम्पन्न करने वालों को आज हम समाजसेवी संस्थाओं के रूप में देखते हैं। कालांतर में मूल प्रवृत्तियों में विकार आने पर इन संस्थाओं का रूप कुछ बिगड़ गया किन्तु मूल भावना आज भी काम कर रही है।

स्वयंसेवी संस्थाओं की परिभाषा

स्वयंसेवी संस्था एक ऐसी सामाजिक इकाई होती है जो ऐसे कार्यक्रमों एवं गतिविधियों के प्रति समर्पित है जिनसे समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन लाया जा सकता है। इसकी गतिविधियों का पूर्व निर्धारित लक्ष्य होता है जो समाज में लाये जाने वाले इच्छित परिवर्तन से जुड़ा होता है। इस लक्ष्य में यह भी निहित होता है कि वर्तमान समाज में सामाजिक सम्बन्ध कैसे हैं एवं सरकार तथा समाज के क्या कार्य हैं।

स्वयंसेवी संस्था की दूसरी विशेषता इसका खुलापन, प्रजातांत्रिक प्रणाली, नौकरशाही का अभाव तथा अर्थ लाभ के बिना सेवा भाव है। सरकारी हस्तक्षेप इसमें नहीं होता एवं यह अपने नियमों, सिद्धान्तों एवं कार्यक्रमों के अनुसार चलने को स्वतंत्र होती है। इसी कारण यह गैर सरकारी संस्था कहलाती है।

स्वयंसेवी संस्थाएँ कानून सम्मत संस्थाएँ होती हैं जिनकी सदस्यता अपनी इच्छा पर निर्भर करती है एवं इसके सदस्य अपनी इच्छानुसार इसे छोड़ भी सकते हैं। किन्तु इन संस्थाओं को खुले द्वार वाली संस्था नहीं कह सकते जिसमें कोई भी अपनी इच्छानुसार आ सकता है। इन संस्थाओं के अपने नियम होते हैं एवं संस्था का सदस्य बनने की एक निर्धारित योग्यता एवं मापदण्ड होता है। इन मापदण्डों पर खरा उतरने वाला व्यक्ति ही इसका सदस्य बन सकता है। इस प्रकार ये संस्थाएँ आंशिक रूप से ही ऐच्छिक हैं।

इनकी तुलना अनैच्छिक या अनिवार्य सदस्यों वाली संस्थाओं से की जा सकती है। अनिवार्य सदस्यता वाली संस्थाओं के उदाहरण हैं परिवार, सम्बन्धियों का समूह,

धर्म, जाति, भाषा इत्यादि। इन संस्थाओं की सदस्यता जन्म से ही मिल जाती है एवं उसे छोड़ा नहीं जा सकता। इसका सदस्य बने रहने के लिए कोई प्रयत्न भी नहीं करना पड़ता एवं सक्रियता की भी आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत स्वयंसेवी संस्थाओं का सदस्य बने रहने के लिए कुछ कार्य करना या सक्रिय बने रहना आवश्यक है। साथ-साथ वास्तविकता यह भी है कि स्वयंसेवी संस्थाओं में अत्यधिक सक्रियता को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता। इसके लीडर सदस्यों की आंशिक सक्रियता ही पसन्द करते हैं ताकि उनका नेतृत्व बना रहे।

एक स्वयंसेवी संस्था व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिन्होंने अपने को सहयोग के आधार पर संगठित किया है। इसका आरम्भ स्वतः स्फूर्त होता है एवं इसका परिचालन भी इसके सदस्यों द्वारा बिना किसी बाह्य नियंत्रण के किया जाता है। इसे व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह द्वारा आरम्भ किया जाता है एवं इसके कार्यकर्ता अवैतनिक या कुछ सवैतनिक हो सकते हैं।

स्वयंसेवी संस्थाएँ बनने के कारण

प्राचीन काल में जीवन पद्धति को सुधारने एवं सामाजिक सम्बन्धों में सामञ्जस्य बनाये रखने का कार्य परिवार एवं धार्मिक संस्थाओं द्वारा किये जाते थे। औद्योगिक क्रान्ति आने पर शहरी वर्ग बढ़ा एवं लोग अपने मूल स्थान को छोड़कर दूसरे स्थानों को चले गये। इस प्रकार संयुक्त परिवार बिखर गये। विज्ञान एवं शिक्षा ने धर्म की महत्ता को कम कर दिया। इस प्रकार जब ये दोनों संस्थाएँ कमजोर पड़ गईं तो स्वयंसेवी संस्थाएँ उनकी भूमिका निभाने के लिए सामने आईं।

इन संस्थाओं को बनाने में अवकाश भी एक महत्वपूर्ण कारण है। खेतिहर समाज में अवकाश मिलने का कोई निश्चित समय नहीं होता था। उद्योगों एवं नौकरी में काम के घंटे निश्चित होते हैं। अतः शेष समय में इन्हें कार्य करने की स्वतंत्रता होती है।

ये संस्थाएँ उस समय विशेष रूप से बनती हैं जब समाज परिवर्तन के लिए परिपक्व होता है। यह एक विचित्र बात है कि ये संस्थाएँ स्वयं भी परिवर्तन लाती हैं किन्तु परिवर्तनशील समाज में ही बनती हैं। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को ये तेज़ कर देती हैं। इसके सदस्य प्रायः एक ही वर्ग के होते हैं अतः वे कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में असमर्थ रहते हैं।

स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रकार

एटज़ियोनी नामक एक अमेरिकी विद्वान ने 1975 में स्वयंसेवी संस्थाओं का अध्ययन करके उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया।

1. Coercive - अर्थात् बलपूर्वक अपनी बात मनवाने वाली

2. Utilitarian - उपयोगितावादी

3. Normative - कुछ मानकों के अनुसार चलने वाली

बल पूर्वक अपनी बात मनवाने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं में धार्मिक समूहों, जातीय समूहों एवं परिवार को माना जा सकता है। जातियों में गोत्र के नियम तोड़ने अथवा उनके विरुद्ध विवाह करने वाले सदस्यों को तुरन्त सज़ा दी जाती है व उन्हें परिवार, ग्राम या पंचायत क्षेत्र से बाहर किया जा सकता है। कभी-कभी मृत्युदण्ड भी देते हैं जिन्हें Honour Killing कहा जाता है। यह प्रथा आदिवासी क्षेत्रों, कबीलाई इलाकों एवं गांवों में आजकल भी मौजूद है।

उपयोगितावादी संस्थाएँ अपने सदस्यों को सुविधाएँ एवं आर्थिक लाभ पहुँचाती हैं एवं अपने नियमों के अनुसार उन्हें चलाने की अपेक्षा करती हैं। Unesco, Helpage आदि इसी प्रकार की संस्थाएँ हैं।

Normative संस्थाएँ इन दोनों से कुछ अलग होती हैं। इनमें नौकरशाही रुझान कम होता है एवं नेता तथा अनुयायियों के मध्य सामाजिक दूरी भी कम होती है। यहाँ कोई भी सदस्य नेता हो सकता है। संस्था के नियमों का पालन सदस्यों की प्रतिष्ठा एवं सम्मान करके, उनकी प्रशंसा करके एवं उन्हें पद देकर कराया जाता है। सदस्यों में निष्ठा एवं प्रतिबद्धता अत्यधिक होती है। प्रायः नेता एक करिश्माई एवं चुम्बकीय व्यक्तित्व वाला व्यक्ति होता है। सदस्यों का चुनाव भी सावधानीपूर्वक किया जाता है।

स्वयंसेवी संस्थाओं के आकार को लेकर भी इनका विभाजन तीन प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम सबसे छोटी स्वयंसेवी संस्थाएँ जो केवल स्थानीय समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने का प्रयत्न करती हैं। ऐसी संस्थाएँ एक नगर में सैकड़ों की संख्या में हो सकती हैं। आवास कल्याण समितियाँ इसी का उदाहरण हैं। दूसरी प्रकार की संस्थाएँ राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने वाली होती हैं। ये संस्थाएँ उन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास करती हैं जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण राष्ट्र से होता है जैसे गरीबी, शिक्षा, सुरक्षा, कानून व्यवस्था, भ्रष्टाचार, खाद्य पदार्थों में मिलावट आदि। तीसरी प्रकार की संस्थाएँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करती हैं एवं समस्त मानव जाति के हित के लिए होती हैं।

प्राचीन भारत में स्वयंसेवी संस्थाओं का स्वरूप

मानव मात्र की सेवा एवं उसकी उन्नति के लिए किये जाने वाले कार्यों में स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा सहयोग प्रदान करने का एक लम्बा इतिहास रहा है। भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही दूसरों की निःस्वार्थ सेवा का महत्त्व रहा है। हमारा

प्राचीन साहित्य ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जिससे यह स्पष्ट होता है कि निर्धन, निर्बल, अशक्त, असहाय, वृद्ध, बीमार, भूखे व प्यासे को सहायता हमारे यहाँ परम धर्म था। नर सेवा नारायण सेवा का सिद्धान्त यहीं प्रतिपादित किया गया है जिसके अनुसार दुखी व असहाय व्यक्तियों की सेवा को ही ईश्वर की सेवा माना गया है व इसी को मोक्ष का मार्ग बताया गया।

परमार्थ सेवा का यह कार्य मुख्य रूप से शासक, धनी व्यक्ति या समाज के अन्य व्यक्तियों के समूह द्वारा किया जाता था। अनेक स्थानों पर मंदिर, धर्मशालाएँ आदि बनाई जाती थीं एवं उनके रख-रखाव में होने वाले खर्च का प्रबन्ध किया जाता था। साधु-संतों, निर्धन एवं बेसहारा लोगों के लिए भोजन एवं वस्त्र का भी प्रबन्ध रहता था। संयुक्त परिवारों में वृद्ध, अपंग, एवं मानसिक रोगियों की भली-भाँति सेवा होती थी।

आदिकाल में सेवा के इस कार्य का प्रेरक तत्व धर्म या कर्तव्य था जो मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति पर आधारित था। उसमें स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, क्रूरता आदि के विकृत भाव नहीं आये थे। कोई कार्य दिखावे के लिए नहीं किया जाता था अतः वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति होती थी। मानव की इसी प्रवृत्ति ने आगे चलकर स्वयंसेवी संस्थाओं का रूप धारण किया।

मध्यकाल में स्वयंसेवी संस्थाएँ

इस काल में स्वयंसेवी संस्थाओं के उद्देश्य एवं कार्य करने के क्षेत्र में विस्तार हुआ। मानव की मूल प्रवृत्तियों में विकार भी आया। इन सबका कारण था सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक परिवर्तन। भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था। इनके शासक आपस में कभी राज्य विस्तार के लिए तो कभी झूठी आनबान, शान के लिए युद्ध करते रहते थे। वे जनहित कार्यों में कम ध्यान देने लगे। विदेशी आक्रमण हुए एवं उन्होंने देश के एक बड़े भू-भाग पर अपना अधिपत्य जमा लिया। सामान्य जन को अपना धर्म परिवर्तन करने पर मजबूर होना पड़ा। अतः वे अपने धर्म या कर्तव्य पालन के स्थान पर अपने सम्प्रदाय को ही धर्म मानकर उसकी रक्षा के लिए ईश्वर की आराधना, पूजा पाठ व कर्म-काण्ड में लग गये।

राजनीतिक उथल-पुथल एवं धर्म पर आघात का प्रभाव समाज पर भी पड़ा। छुआ-छूत, बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा इत्यादि से समाज अभिशप्त हो गया। जाति प्रथा ने ग्रामों में ही नहीं, नगरों तक में समाज को बाँट रखा था। इस बदले हुए परिवेश में स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रेरक तत्व केवल परोपकार व सेवा की भावना न होकर कुप्रथाओं को समाप्त करके एक स्वस्थ एवं उन्नत समाज की स्थापना हो गया।

प्राकृतिक आपदाओं एवं विपत्तियों के समय क्षेत्रीय या स्थानीय रूप से लोग सहायता के लिए उठ खड़े होते थे एवं धर्म, जाति, भाषा तथा क्षेत्र के भेदभाव भुलाकर विपदा में फंसे लोगों की सहायता करते थे। सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दी में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब बाढ़, दुर्भिक्ष, भूचाल आदि के समय जन साधारण ने स्वयंसेवा संगठित होकर व्यापक रूप से सहायता कार्य किये। 18वीं व 19वीं शताब्दी में सामाजिक सुधारों की एक लहर चली जिसने अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं को जन्म दिया।

समाज सुधारकों में सबसे महत्वपूर्ण नाम राजा राम मोहन राय (1722-1833) का आता है। उन्होंने सती प्रथा को समाप्त करने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया एवं मूर्ति पूजा के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए ब्रह्म समाज की स्थापना की। बंगाल में उनके पश्चात् द्वारिकानाथ टैगोर, देवेन्द्र नाथ टैगोर, शेष पद बनर्जी तथा केशवचन्द्र सेन के नाम आते हैं। पश्चिमी भारत में यह कार्य परमहंस सभा एवं प्रार्थना समाज ने किया। 1887 में इंडियन सोशल कान्फ्रेंस की स्थापना हुई। महादेव गोविन्द रानाडे (1842-1901) इसके संस्थापक थे। उन्होंने दहेज उन्मूलन, विधवा विवाह, बालिका शिक्षा, अन्तर्जातीय विवाह आदि पर जोर दिया एवं बाल विवाह के विरुद्ध आन्दोलन चलाया।

इन सुधारकों में एक महत्वपूर्ण नाम स्वामी दयानन्द (1824-1883) का है। उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की। स्वामी जी ने जातिवाद व बाल विवाह के विरुद्ध तथा विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए आन्दोलन चलाया। वे मूर्तिपूजा के विरुद्ध थे तथा धर्म परिवर्तन करने वाले हिन्दुओं को पुनः हिन्दू बनाने के लिए प्रयत्न किया। शिक्षा प्रसार के लिए अनेक विद्यालयों की स्थापना की। एक बड़े सुधारक स्वामी विवेकानन्द (1863-1902) ने राम कृष्ण मिशन की स्थापना की। यह मिशन शिक्षा स्वास्थ्य एवं समाज सेवा के क्षेत्र में कार्य करता था।

यदि इस युग में भारत के बाहर की बात करें तो अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इंग्लैंड में दास प्रथा को समाप्त करने का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इसके लिए अनेकों संस्थाएँ गठित हुईं जिनके द्वारा किये गये प्रयत्नों के फलस्वरूप 1840 में दास प्रथा को समाप्त करने के लिए सभा का आयोजन किया गया। ऐसी ही एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था रेड क्रॉस वर्ष 1863 में अस्तित्व में आई। उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसी अनेकों संस्थाओं की स्थापना हुई जिनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के मुद्दे उठाये गये।

आधुनिक युग में स्वयंसेवी संस्थाओं का स्वरूप

वर्तमान समय में स्वयंसेवी संस्थाओं अथवा एन जी ओ का जो स्वरूप हमारे

सामने है उसका उद्गम 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के समय हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र को तैयार करते समय इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि किसी ऐसे शब्द का उपयोग किया जाय तो अन्तर्राष्ट्रीय निजी संगठनों (Private Organisations) को अन्तर्शासकीय विशिष्ट संगठनों से प्रथक कर सके। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए एन जी ओ शब्द का उपयोग आरम्भ किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ के स्तर पर किसी भी प्रकार के निजी संगठन को एन जी ओ या स्वयं सेवी संस्थाएँ माना गया। इस प्रकार स्वयंसेवी संस्थाएँ वे कहलाईं जिन पर न तो किसी प्रकार का सरकार का नियंत्रण था और न जो किसी राजनैतिक दल के माध्यम से सरकार को प्रभावित करती थीं।

इस युग के आते-आते सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, धार्मिक समस्याएँ और बढ़ीं या यह कहना अधिक उचित होगा कि इन क्षेत्रों से सम्बन्धित छोटी-छोटी किन्तु अधिक प्रभाव पैदा करने वाली समस्याओं के प्रति लोगों की जागरूकता बढ़ी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इसमें तेजी आई है। विकास कार्य के लिए मूलभूत ढांचे का निर्माण आवश्यक था। बड़े-बड़े बांध बनाये गये। इनके लिए भूमि अधिग्रहण के फलस्वरूप विस्थापित लोगों के पुनर्वास की समस्या भी आई। जनसंख्या में वृद्धि के कारण भी कई समस्याएँ पैदा हुईं।

इन सभी समस्याओं के समाधान के लिए भारी संख्या में स्वयंसेवी संस्थाएँ सामने आईं। कभी-कभी अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार नीतियों का निर्माण करती है किन्तु उनके दूरगामी परिणामों पर विचार किये बिना उन्हें लागू करने का आदेश दे देती है। ऐसी दशा में वे स्वयंसेवी संस्थाएँ अपने तर्क तथा वैज्ञानिक शोधों की आवश्यकता पर बल देते हुए उस निर्णय पर पुनर्विचार करने अथवा उसे बदलने का दबाव बनाती हैं। हाल ही में बी टी बैंगन की खेती पर निर्णय लेने के समय इन संस्थाओं ने ऐसा ही दबाव बनाया व सरकार अपने निर्णय के पूर्व सभी पहलुओं पर विचार करने के लिए सहमत हो गई। भ्रष्टाचार की भी समस्या ने इस युग में विकराल रूप धारण कर लिया है। इसके निवारण के लिए भी अनेकों स्वयंसेवी संस्थाएँ काम कर रही हैं व सरकार पर स्विस बैंक में पड़े काल धन को वापस लाने का दबाव बना रही हैं। इस दबाव में आकर सरकार ने प्रयास किये व परिणाम स्वरूप अभी हाल में स्विस बैंक ने इस सम्बन्ध में भारत सरकार को सहायता करने का भरोसा भी दिया है।

स्वतंत्रता आन्दोलन से भी स्वयंसेवी कार्यों को प्रोत्साहन मिला। गांधी जी व उनके दलितोद्धार, ग्राम सुधार, छुआछूत उन्मूलन, ग्राम उद्योगों की स्थापना इत्यादि ऐसे कार्यक्रम थे जिन्होंने स्वयंसेवी आन्दोलन में जान डाल दी। गांधीजी का

समस्त आन्दोलन ही आत्म निर्भरता एवं स्वयं कार्य करने के सिद्धान्त पर आधारित था। वे एक ऐसे आत्मनिर्भर ग्रामीण समाज का निर्माण करना चाहते थे जो अपनी आवश्यकता के लिए किसी पर भी निर्भर न हो। वास्तव में स्वयंसेवी संस्थाओं का उद्देश्य भी यही होना चाहिए। किन्तु आजकल प्रायः ये संस्थाएँ लोगों में सामान बांटने एवं उन्हें सुविधाएँ प्रदान करने का माध्यम बनकर रह जाती हैं। यद्यपि यह कार्य भी आवश्यक है किन्तु जन समुदाय में स्वायत्तता का भाव भरकर उन्हें अपनी समस्याएँ स्वयं हल करने के पथ पर अग्रसर करना अधिक आवश्यक है। इससे समस्या का स्थाई रूप से हल निकलेगा। गांधीजी का यही प्रयास था।

गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों, सत्याग्रह, उपवास, ग्राम स्वराज इत्यादि का प्रभाव आज भी परिलक्षित होता है। गुजरात में SEWA, एकलव्य, दिशा इत्यादि इसी आधार पर बनी हैं। गांधीजी से प्रभावित सबसे प्रसिद्ध कार्यकर्ता मेघा पाटेकर हैं। उनकी कार्यशैली भी वही है। उनकी संस्था रचनात्मक कार्य भी कर रही है व गलत कार्यों को रोकती भी है। वे बड़े बांधों से होने वाली क्षति की और ध्यान दिलाकर उनको रोकने के लिए भी कार्य कर रही हैं। 2004 में मुम्बई के पास अन्नाभाऊ साठे नगर में सरकार ने मलिन बस्ती हटाने का काम किया जिसमें 16 लोगों की मृत्यु हो गई एवं 3.5 लाख लोग बेघर हो गये। ऐसे समय मेघा पाटेकर ने वहाँ जाकर 'घर बनाओ घर बचाओ' आन्दोलन चलाया जिसमें सभी निवासियों ने भाग लिया क्योंकि किसी के पास रहने के लिए घर ही नहीं बचा था। जल बिरादरी के अध्यक्ष एवं मैगासेसे पुरस्कार से सम्मानित राजेन्द्र सिंह ग्राम वासियों को संगठित करके जल संरक्षण करने एवं जल अभाव को दूर करने में लगे हुए हैं।

इंडियन सोशल कांफ्रेंस की स्थापना महादेव गोविन्द रानाडे ने 19वीं शताब्दी में की थी। 1901 में उनके देहान्त के बाद चन्दावरकर इसके सचिव हुए। उन्होंने कांफ्रेंस का लक्ष्य सम्पूर्ण राष्ट्रीय पुनुरुत्थान घोषित किया। इसके अन्तर्गत एक सेन्ट्रल सोशल रिफार्म्स एसोशिएशन बनाई गई जिसका काम प्रान्तीय एवं जिलों में कार्यरत एसोशिएशन के कार्य में समन्वय स्थापित करना, साहित्य प्रकाशित करना तथा अन्य संगठनों से सम्पर्क स्थापित करना था। 1984 में एक विशाल अधिवेशन हुआ जिसमें मुसलमान, सिक्ख, आर्य समाजी, ब्रह्म समाजी, बौद्ध आदि समस्त संगठन सम्पूर्ण भारत से इकट्ठा हुए। यह निश्चय किया गया कि सम्पूर्ण भारत में सुधार संगठन बनाए जाये।

1905 में गोपाल कृष्ण गोखले ने सरवेन्ट्स आफ इंडिया सोसायटी बनाई। यद्यपि यह एक राजनैतिक संगठन था फिर भी इसकी अधिकांश गतिविधियाँ सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक एवं दलितोद्धार के क्षेत्र में थीं। 1917 में सोशल लीग

बनी जो श्रमिकों में कार्य करती थी। इसने श्रमिकों के लिए नये पुस्तकालय, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के क्षेत्र में भी कार्य किया। महिलाओं का भी एक संगठन बना एवं 1927 में आल इंडिया वीमेन्स कांफ्रेंस की स्थापना हुई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नई समस्याएँ पैदा हुईं व स्वयंसेवी संस्थाओं का उत्तरदायित्व बढ़ गया। इधर अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ एवं वे उन्हें सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास का उपकरण मानने लगीं। स्वयंसेवी संस्थाओं को इन संस्थाओं द्वारा विदेश से तथा सरकार द्वारा भी भारी मात्रा में अनुदान मिलना आरम्भ हो गया। किन्तु कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं में निजी स्वार्थ एवं भ्रष्टाचार ने घर बना लिया है जिसके फलस्वरूप उन्होंने प्राप्त सहायता का दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। यह उचित नहीं है।

स्वयंसेवी संस्थाओं में आपस में सामंजस्य भी नहीं है। एक संस्था CAPART (Council for People's Action and Rural Technology) 1987 में स्थापित की गई जिसका कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाओं का मार्गदर्शन व सहायता करता है। स्वयंसेवी संस्थाओं को एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन का रूप देने की आवश्यकता है। इधर बाबा रामदेव के नाम से प्रख्यात योग गुरु ने भारत स्वाभिमान एवं पातंजलि समिति के नाम से संस्था का निर्माण किया जिसका उद्देश्य देश भक्ति व राष्ट्र धर्म की भावना जगाकर भ्रष्टाचार, कालेधन की समाप्ति, दहेज, आतंकवाद, मिलावट आदि समाज में फैली बुराईयों को दूर करना है। बाबा रामदेव ने स्वास्थ्य के क्षेत्र में भारत के साथ-साथ विदेशों में भी जागरूकता लाने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। देखना यह है कि इस क्षेत्र में वे किस सीमा तक सकारात्मक परिणाम ला पाते हैं। आशा करनी चाहिए कि इस प्रकार की अन्य संस्थाएँ भी सामने आएंगी जो बढ़ती हुई समस्याओं का निवारण में सफल होंगी।



वही मंगल है जिससे मन प्रसन्न हो। वही जीवन है जो परसेवा में बीते। वही अर्जित है जिसका भोग स्वजन करें।

- गुरुडपुराण

वही समाज सदा सुखी रह सकता है जिसने नैतिक गुणों को अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया है।

- रस्किन

एन०जी०ओ० बनाम “स्वयं सेवी संगठन”

– किशोर अग्रवाल

भारत में आज 12 लाख से अधिक एन.जी.ओ. एवं संगठन रजिस्टर्ड हैं जिनमें से लगभग 20% शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। इन एन.जी.ओ. को अनुमानतः देश और विदेशों से 800 मिलियन डालर (3200 करोड़ रु.) की आर्थिक सहायता दी जाती है। प्रतिवर्ष इतनी बड़ी धनराशि मिलने के बाद स्वतन्त्रता प्राप्ति के 63 वर्षों के बाद भी इन एन.जी.ओ. के अस्तित्व का प्रभाव क्यों नहीं दिखाई पड़ता ? इनका विश्लेषण करने से कुछ चौंकाने वाले तथ्य सामने आते हैं।

वास्तव में एन.जी.ओ. तथा स्वयं सेवी संगठन का ताना बाना तथा कार्यशैली बिल्कुल अलग है। देखने में कागजों पर दोनों एक ही तरह के संगठन दिखाई पड़ते हैं। स्वयं सेवी संगठन द्वारा किये गये कार्यों तथा आंदोलनों का प्रारम्भ तथा इनकी समाज में भूमिका महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये स्वतन्त्रता आंदोलन, खादी व स्वदेशी के प्रयोग, नशाबन्दी तथा छुआछूत के खिलाफ आंदोलनों से समझी जा सकती है तथा बाद में 1960-70 के दशक में विनोबा भावे द्वारा भूदान व सर्वोदय आंदोलनों के जरिये इन स्वयंसेवी संगठनों के सेवा कार्य को आगे बढ़ाया। शनैः-शनैः स्वयं सेवी संगठनों की समर्पित समाज सेवा को देखकर एन.जी.ओ. की सोच में परिवर्तन आना शुरू हो गया और वे भी भारत में पंजीकृत होने लगे। आज पूरे देश में पांच सितारा संस्कृति में डूबे हुए एन.जी.ओ. कुकुरमुत्तों की तरह उग आए हैं।

एन.जी.ओ. की स्थापना के पीछे पूरी तरह से व्यावसायिक सोच होती है। अधिकांश का उद्देश्य येन केन प्रकारेण देश और विदेशों से आर्थिक सहायता प्राप्त करना तथा दिखावे के लिए कार्य करना रह गया है। इन संगठनों के कर्ता धर्ता आला राजनीतिज्ञ, अफसरशाह, सैलीब्रिटिज, इनके नजदीकी रिश्तेदार या इनकी पत्नियां होती हैं। ये नाबार्ड तथा एकार्ड जैसे संगठनों से तथा सरकारी मंत्रालयों से कल्याणकारी योजनाओं की गरीबों तथा असहाय जरूरतमन्दों के हिस्से की अरबों रूपये की रकम हज़म कर जाते हैं। इन संगठनों के कार्यक्षेत्र की कोई सीमा नहीं होती है। ये दुनिया का प्रत्येक कार्य करने में सक्षम होते हैं। इनका पंजीकरण इस प्रकार कराया जाता है कि ये कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, गरीबी उन्मूलन जैसे किसी भी क्षेत्र में कार्य कर सकें तथा मलाईदार प्रोजेक्ट हासिल कर अरबों रूपये की रकम को डकार सकें। ये इस कार्य के लिये अपने पद व रसूख का दुरुपयोग कर एजेन्टों के माध्यम

से मोटी कमाई करने की जुगत में लगे रहते हैं। वास्तव में ये काले धन को सफ़ेद करने की दुकानें बन चुके हैं। बड़े शहरों में लक्जरी सुविधाओं, शानदार आफिस, और बड़े-बड़े वेतन के साथ काम करने वाले बड़े ब्रांड के विदेशी एन.जी.ओ. हैं। इनकी दान से प्राप्त कुल आय का 85% से 90% तक का हिस्सा इनके प्रशासकीय खर्चों में लग जाता है तथा बमुश्किल 10%-15% पैसा ही जरूरतमन्दों तक पहुँच पाता है। इनका उद्देश्य केवल फंड रेजिंग है जिसके लिए ये अंग्रेजी बोलने वाले पेशेवर लोगों की सेवायें लेकर दानदाता संस्थाओं को प्रभावित करते हैं। इनके उद्देश्यों को देखकर लगता है कि आदर्शों, नैतिक मूल्यों इनसे बड़ा कोई पैरोपकार नहीं है जबकि वास्तव में इनमें सेवा जैसी कोई भावना कार्य नहीं करती है। आज देश में ऐसे एन.जी.ओ. की बाढ़ आई हुई है जो प्राइवेट सेक्टर की बड़ी कम्पनियों तथा मल्टीनेशनल कम्पनियों के हितों के लिए प्रोटेक्शन वाल का काम करते हैं।

ऐसा नहीं है कि सरकार का ध्यान इस ओर नहीं है। राजीव गांधी के कार्यकाल में एन.जी.ओ. के कामकाज की समीक्षा के लिए अरूणा राय के पति बंकर राय की अगुवाई में एक आयोग का गठन किया गया था किन्तु उसकी संस्तुतियों को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। इस दिशा में केन्द्रीय मंत्रालय और योजना आयोग ने अच्छे काम करने वाले संगठनों की लिस्ट बनाकर बेबसाइट पर प्रकाशित भी कराई है।

कुछ एन.जी.ओ. तथा स्वयं सेवी संगठन ग्रास रूट स्तर पर समाजसेवा कर जागरूकता पैदा कर निर्धन व असहायों की मदद के लिए निःस्वार्थ व समर्पित भावना से कार्यों में जुटे हैं। इनका ध्यान सहायता प्राप्त करने पर न होकर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है।

उत्तराखण्ड में पद्मश्री अवधेश कौशल की संस्था ‘रूरल लिटिगेशन एण्ड एनलाइटमेंट सेंटर’ ने अवैध खदानों के बन्द कराने तथा शोषितों का जीवन स्तर सुधराने के लिए उल्लेखनीय कार्य किया है। ‘लिज्जत पापड़’ की शुरूआत ‘श्री महिला गृह उद्योग’ के अर्न्तगत सात अल्प-शिक्षित महिलाओं ने की जो आज पूरे देश में जानी जाती है। साहित्य के क्षेत्र में ‘कथा’ युवा साहित्यकारों की पुस्तकों को प्रभावित करती है। मुंबई में ‘प्रथम’ झुग्गी झोपड़ियों में बच्चों को साक्षर बनाने के काम में 1994 से लगी है। यह 21 राज्यों में सक्रिय है। ‘संपदा ट्रस्ट’ किसानों और मजदूरों को काफी कम दरों पर ऋण देती है। ‘अक्षय पात्र’ गरीब बच्चों को पांच रूपये में मिडडेमील उपलब्ध कराता है। ‘एस.ओ.एस. चिल्ड्रेंस विलेज’ में अनाथों की परवरिश इस प्रकार की जाती है जहां माँ के प्यार के साथ भाई बहिनों का प्यार भी बच्चे को मिल सकें। एक एस.ओ.एस. में 15-20 बच्चों का घर होता है। भारत में 34 एस.ओ.एस. चिल्ड्रन विलेज चल रहे हैं।

NGOs - Role of Leadership and Professionalism

- Atam Dev

'हेल्पेज इंडिया' बुजुर्गों की देख-रेख व उनके अधिकारों के लिए कार्य करती है। 'कल्प-वृक्ष' पर्यावरण के क्षेत्र में जागरूकता लाने के लिए कार्य करती है। 1994 से दिल्ली में 'नाज फ़ाउंडेशन' एड्स के मरीजों के इलाज के लिए कार्य कर रही है। 'सेवा' ग्रामीण औरतों को आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा दिलाने के लिए कार्यरत है। दिल्ली में 'निरन्तर' 1993 से प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रही है। 'जागो री' संस्था बिना सरकारी सहायता के महिलाओं में भ्रूण हत्या की रोकथाम के लिए जागरूकता पैदा करने का कार्य कर रही है। महाराष्ट्र में 'अभय बंग' गाँवों में जाकर उन्हीं की जीवन शैली अपना कर ग्रामीणों के उत्थान के लिए कार्य कर रही है। 'वाटर आर्गनाइजेशन ट्रस्ट' ने पुणे के दारेवाड़ी की बंजर जमीन को प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से हरा भरा कर दिया है।

स्वयंसेवी संस्थाओं में 'भारत विकास परिषद्' के नाम के उल्लेख के बिना बात अधूरी रहती है। 1963 में स्थापित यह संस्था वर्तमान में पूरे देश में 1100 शाखाओं के 40000 से अधिक सदस्य परिवारों (लगभग 80000 महिलाओं, पुरुषों व युवाओं) के माध्यम से पर्यावरण, चिकित्सा, शिक्षा, विकलांग सहायता के अतिरिक्त भारतीय संस्कारों के प्रति समर्पित भाव से बिना सरकारी सहायता के समाज सेवा में लगी हुई है।

ये कुछ गैर सरकारी समाज सेवी संगठनों के द्वारा किये जा रहे कार्यों की झलक मात्र है जिनसे प्रेरणा पाकर बंजर भूमि हरी भरी हो जाती है, दूरदराज के लोग मिलकर बिना सरकारी सहायता के सड़क बना देते हैं, पूरा गाँव साक्षर हो जाता है, रेत की धरती पर झील बना दी जाती है। ये संगठन देश व समाज की उन्नति के वाहक बनकर जागरूकता और चेतना की मशाल को थामे हुए हैं।

इन समाजसेवी संगठनों को यदि किसी स्तर पर समन्वित कर इनकी क्षमताओं का योजनाबद्ध तरीके से उपयोग किया जा सके तो भारत की तस्वीर बदल सकती है। सरकार यदि इन संगठनों को समन्वित कर विश्वास में लेकर इनकी सहायता से समाज सेवा करना चाहे तो रास्ते की रुकावटें दूर होती चली जाएंगी।



NGOs are non-political, non-profit and non-governmental organisations. The term "non-government-organisation" is of recent origin. However, members of society have always been organising themselves to attend to social needs or such of the functions in which the governments of the day have been found wanting. Activities of NGOs could aim at charity, providing much needed service or empowering the society by creating awareness about their own potential power to control their lives. Their area of work could be a particular community, a city, a nation or may operate at international level.

NGO may initially be founded by a person or a group of persons with a missionary zeal and in due course it is joined by others. It has a mission to accomplish. In commercial terms, it is the society that is its "customer" and which it aims to serve. Does the role and skill-set of its leadership have to be different from that of a commercial or governmental organisation? What qualities or skills should its leaders possess or need to acquire? What is the role of professionalism in NGOs?

Role of Leadership

It is true that some may be born with leadership qualities. While it helps if one is born in a wealthy family, but one can still become affluent through his efforts. Similarly, aspiring leaders can work on their attitudes and gain knowledge to be successful leaders.

We discuss below some of the important qualities which the leadership should possess for success of a non-government voluntary organisation. A leader has the capacity to influence others in the attainment of organizational goals and he is not just a manager simply concerned with organising and planning activities.

Shared Vision: ANGO is born in the vision of its founder(s). The leadership must share a clear vision of the organisation and a commitment to its cause. It should be able to inspire and motivate others to its goal. It must always be able to relate organisation's activities to its overall vision, mission, and values. There has to be constant focus on the goal - clarity of objective - and it must be shared throughout the organisation.

Shared leadership: In a social organisation, the individuals join an association voluntarily and they can not be subject to such controls as in the case of for-profit organisation. The leadership in such an organisation has accountability without control. The compliance is the result of the inspiring or motivational leadership which gets extraordinary performance out of ordinary people. One could say that there are bosses but no bossism.

There is a wide variety in the way the NGOs are constituted. In the Indian context, the NGOs are normally registered societies having provision of Managing Committees or Boards to govern them. In such organisations, there is no single leader. There is collective leadership - a collegium which shares formulation of programmes, tasks and also the responsibilities for their implementation. All engaged in such an effort want the organisation where they work to continue to progress even when they are gone. Thus it is choosing service over self interest. It is sort of "stewardship" where we hold the organisation in trust for next generation by serving rather than controlling the people we work with.

Integrity and Mutual Trust: According to Kautilya who wrote "Arthashastra" for his King in the 4th century before Christ, the foundation of leadership consists of honesty, truthfulness and straight dealing. Self-discipline is the most important personal quality of a leader. Leadership must have absolute integrity and firm value set. This means having strong internal guiding principles that one does not compromise. Integrity promotes trust, and not much is accomplished without trust. Mutual trust is a shared belief that you can depend on each other to achieve a common purpose. It also means treating others as you would wish to be treated. Thus a leader must genuinely love and trust the people. Without a loving atmosphere, a voluntary organisation will simply wither away.

Effective Communication: The leadership needs to possess ability to communicate their vision to their colleagues, staff and volunteers. They must ensure smooth flow of communication both within the management team as well as throughout the organization. Communications have to be clear and unambiguous.

Within the leadership group, each one would be leading the group in one or other area of his specific responsibility. He needs to have skill to be both liked and respected. A leader can have influence only through relationship and the latter determines his effectiveness to lead the team

and the organisation. A leader is more a listener than a talker. Listening to others' views is rewarding investment which pays good dividends.

Partnership: Every organisation, more so a NGO, is a team work. All are active participants in the process of leadership. It is only through a collective effort that the organisation can succeed in its mission. The leadership must possess skills to attract and manage seemingly non-compatible persons with different skills and extract the best out of them for the organisational goal. It is similar to our body where it's five constituents - air, vacuum, water, earth and fire - though non-compatible cannot function if anyone them is absent.

Leaders to be effective must adopt style best suited to the occasion. A good leader knows when to be a leader and when to be a follower. Leadership's role is that of a facilitator. A leader leads by example and he should be more participative than directive. According to the Tao, the greatest leaders are unknown to their subjects. When a leader organises matters in complete harmony, the subjects go about their work and believe that their projects are accomplished entirely through their own efforts leading to contentment all round. A leader promotes the team, not himself.

Decision-making: In order to achieve success in its mission, there has to be adequate consultation and discussions at various levels of the organisation. There can be greater active implementation of decisions only when individuals act out of their own choices, as opposed to acting out of compliance. Leadership should not try to thrust its decision on the organisation. Decisions should be taken only after consultation with all stakeholders. However once decisions are taken, there should be no abrupt reversal. If changes are done, these should be made only after due deliberations and in complete transparency. Leadership should work for decentralisation of execution with careful monitoring.

Innovation: The leadership should have qualities to innovate and generate newer ideas for fulfillment of organisation's goals through discussions within the organisation and also through consultations with outside experts in the relevant fields. It should be willing to introduce new technologies and try new ways of working. Without infusion of newer ideas, and the resultant measures, any organisation is likely to become dormant.

To sum up, leadership in a non-profit social organisation is essentially a collective leadership, imbued with a vision to change the society, generating mutual trust, organizing and motivating people through effective communication, creating comradeship, innovating and guiding to achieve the organisation's goals in an efficient manner.

Role of Professionalism

Historically, the non-profit organisations in India have been founded by individuals or business families. There is always a dependence on the donors in absence of means to generate resources for their own. This results in adopting a non-corporate approach as distinct from the business sector. There is also danger of non-profit organizations being misused or mismanaged to serve other interests and could be subject to corruption. Further, inability to generate enough funds may force the NGOs to engage below par manpower and be unable to use modern technological tools.

The NGOs also face increasing pressure to satisfy their own members and the society which expects them to consistently meet the standards of transparency and accountability in their work.

Spread of Professionalism: Whatever their orientation or level of functioning, there is now growing awareness that NGOs can certainly benefit if these are professionally managed. Professionalism can help them achieve their targets more efficiently and effectively. This movement has been fueled by variety of reasons.

Recently there has been tremendous rise in the number of NGOs operating in India. The scale of their operation is also increasing necessitating large funding. Corporates funding the non-profit sector insist on accurate financial tools and measurement techniques. Secondly, more and more professionals, both serving and retired, are joining the NGOs to share their expertise. When senior citizens, who had professional careers, join non-profits to usefully utilize their spare time, they bring with them their professional expertise. Thirdly, many professionals themselves are coming forward to set up their own NGOs because they find it more rewarding and satisfying than a career in a company.

Fourthly, even where professionals are not part of NGOs, the organisations are recognizing the need to engage professionals or adopt professional practices to achieve their organisational goal more effectively. Fifthly, many non-resident Indians are coming forward to finance

development of their own native villages and are insisting on professionalism in execution of the funded works and the reporting procedures.

Lastly, these days many management graduates opt to work initially for an NGO before plunging into corporate world. Working in NGO can help them to hone their people management and decisions making skills in a real world environment. Their internship also provides NGOs with fresher ideas and concepts.

Professionalism Defined: But, what do we mean by "professionalism"? Generally speaking any person who has obtained a degree in a professional field is considered "professional". In practice, a professional is one who is extremely competent in a job. Professionalism thus refers not only to the qualifications and proper education of a person but also to the high-quality standards achieved in a job. Professional NGOs attain high-quality standards in their social work

Characteristics of Professional NGO: As a NGO embarks to fulfill needs of the society in efficient, effective and transparent manner, professionalism would demand that it adopts the following:

Organisational

- A clearly articulated mission statement of the organisation
- Meeting all legal requirements in respect of its registration and regular submission of periodical reports to the registration agency;
- Standardization of its procedures of work and enforcement of their implementation;
- Clear description of roles and accountability of all involved in the work - accountability within the organisation, towards the donors and the society;
- Transparent membership records and election of office bearers as per its Constitution;

Financial

- Adoption of appropriate financial accounting systems in respect of maintenance of accounts and publishing its financial reports;
- Utmost economy in incurring expenditure on projects / programmes;
- Frugality in expenditure on members themselves;
- Regular independent audit of its accounts and approval by the competent authorities;

Operational

- Enforcing effective internal management;
- Systems for strategic planning of its programmes;
- Using the most advanced technology available for its work;
- Ensuring that the services offered maintain quality;
- Meeting its obligation towards environmental concerns by using appropriate technologies;
- Adequate compensation to staff engaged;
- Ethical means in achieving its objectives;
- Conducting regular cost-benefit analysis or project appraisal;
- Procedure for annual public reporting on its work

Impact of Professionalism : Professionalism greatly impacts the NGOs in variety of ways.

- Professionalism in NGOs enables them to expand their area of operation geographically as well by taking up more than one specific issue to serve the society.
- Many large NGOs, particularly those who have international operations, are now going in for the ISO certification which helps them to improve quality, transparency and credibility. It also serves as a worldwide recognition of quality of their administration.
- As the non-profit organisations become transparent in their operations, they can expect increased funding from varied sources - both governmental and international agencies.
- Skillful management of relationship by professional organisations help NGOs to form effective, long-term partnerships with businesses and state agencies.
- With more funds they can afford to engage qualified resources and employ latest technologies in fulfillment of their organisational goals and mission.
- The high-quality standards of NGOs can make them competent to undertake sociological research and also provide guidance to other organisations in non-profit sector.

Professionalism is thus need of the hour. In their mission to serve the society, NGOs will immensely benefit by employing high quality standards, transparency and accountability in their work. □

Challenges Before NGOs in 21st Century

- Suresh Chandra

Advocates of the NGOs have put forward the idea of the third sector in society in which the state and market are the first and second sectors. The NGO is separate from the state because it is a non-governmental organization; it is separate from the market because it is a non-profit organization. The last decade of 20th century may justly be described as decade of NGOs. The NGOs have become a prominent part of the Indian social landscape. Not only that, in the countries of Africa, Asia, and Latin America they are playing a transformative role because the state in most of these countries is corrupt and domestic institutions are fragile and ineffectual.

Voluntary organizations and activist groups are viewed as expressions of people's own initiatives and of will to bring social change. They should not become implementing agencies of Government sponsored programmes or the schemes of the international agencies. It has been seen that large flow of government or foreign funds has an adverse impact on the voluntary character of the NGOs. Sometimes, if not always, they also become corrupt and a source of siphoning off the government and foreign money.

Apart from swindling money, some other weaknesses have come to surface in the working of the NGOs. They lack accountability and professionalism. There is lack of coordination among the organizations and they do duplicate work in the same area and thus waste resources. A whole lot of literature has come up highlighting the strength and weaknesses of the NGO working. It is a challenge for the leaders of the NGO movement to change themselves according to changing times and emerge as a great social force in 21st century. Here are some of the weaknesses of the NGO movement.

Lack of Honest and Dedicated Persons to run the NGOs- The most important element in making an NGO successful is its human element. With a few exceptions, the persons associated with NGOs are not service oriented. Many of them make it their whole time profession and their motive is to make money. They lack qualities of leadership. A

leader should understand the changing times and change the rules accordingly. He should have a vision of where his NGO is headed. In the absence of such vision his NGO will fail and flounder.

Moreover, a leader has to be accessible to the people he leads. He can not afford to run his NGO from behind the closed doors of his office. He has to work with the rest of his team and lead them from the front. He should also be resilient to failures. If he fails hundred times, he should not lose heart and must try again.

The other qualities expected of a leader are the ability and willingness to delegate authority to take decisions. It makes the organization more action oriented and motivates the followers.

The word Emotional Intelligence (E.I.) is very much in vogue these days. The word means to achieve one's goal through the ability to manage one's own feelings and emotions and also to be sensitive to others feelings. It also includes decisiveness and assertiveness. The leader should be able to motivate his followers and congruity between their individual goals and NGO goals. His mantra should be-

Living together is a beginning.

Keeping together is progress.

Working together is success.

Lack of ethical values - The word "ethics" means the science of morals in human conduct, moral philosophy, moral principles and rule of conduct. The utility of ethics rests on the fact that it requires one to reason, to analyse and to search for morally correct position while taking a decision. In Hindu religion ethics or righteous path is called Dharma.

The experience of 20th century tells that NGOs are indulging in unethical practices for getting money. They do not provide services to the poor but use it for their selfish ends. Thus is a very awkward position bringing bad name to NGO movement. The challenge for 21st century is to wipe off the stigma and emerge as selfless service providers.

Lack of Transparency - The common masses and government bureaucracy perceive NGOs as crooked and dishonest. Their credibility is low due to many reasons. The NGO sector should itself ex-communicate those fraudulent organizations which are giving bad name to the sector.

Smaller NGOs make themselves more indulgent towards the family and kinship. The founder of the NGO finds himself more comfortable when working with his family members.

There is a tendency to spend more money on assets like sophisticated buildings and equipment. Such investments are often seen as more tangible proof of progress and therefore more easily conducive to fund- raising.

Projects are planned without sufficient consultation and participation of the community. These are run by outside funds and personnel. Such projects are likely to be closed when outside help stops coming.

NGOs become self-serving - Big NGOs develop a bureaucratic structure. Sometimes they become part of the ruling elites and are dominated by well to do social groups. The distance between the beneficiaries and the so called voluntary workers becomes wide and the very purpose for which the organization stands is defeated.

So, the NGOs must themselves evaluate their performance from time to time and the target groups should also get an opportunity to express their views.

Use of foreign funds for religious purposes -Foreign donors seem to be in a generous mood when it comes to funding religious NGOs. Of the top 25 receivers of foreign funds in India, 13 are religious organisations. Several of these are involved in social causes: building of schools, housing for the poor, literacy etc. But trouble arises when the NGOs indulge in religious conversions and such other nefarious activities. It is suspected that a few organisations have become the channels for financing the terrorist activities in India. They are destabilizing the secular structure of our country.

Lack of proper personnel policy - NGOs very often do not put the required efforts to recruit proper persons for proper positions. Voluntary workers are full of enthusiasm and dedication but they lack professionalism. This is an age of specialization and specific projects should be assigned to trained specialists. Sometimes the paid workers are poorly paid and survive on starvation wages. They are unable to give the optimum output which is expected of them. Hence, they should start the practice of manpower planning, adopt scientific methods of recruitment

and give proper wages to proper persons.

NGOs get income tax exemption under various sections of income Tax Act. Not only their own income is exempt but donations given to them are also get tax exemption. Some donors and NGOs misuse these provisions. Rich people give donations to NGOs to save tax on the amount and the recipient NGOs return, at least a part of it, if not the whole and thus cheat the government.

A number of coaching institutes, hospitals and even management and engineering colleges are evading tax under the garb of NGOs. They charge hefty fees but pay no tax.

NGOs should work in cooperation with the local bodies for village development.

The role of Voluntary Organisations has not been appreciated by many experts. Bunker Roy in his Article, "Panchayati Raj and Voluntary Organisations" observes, "The Role of Voluntary Organisations in this fast changing scenario is suspect. Many NGOs who claim to be community-based organisations (CBOs) have been left behind and are reluctant to change. They are scared to see and indeed accept that all development work is also political work because it involves changing attitudes. If that is the case then they have to see how they work with rather than against PRIs (Panchayat Raj Institutions). The job of VOs is to see that good, decent, honest and committed people get elected to manage PRIs, provide leadership and tackle the problems of corruption and wastage of public funds. It is time, VOs start looking at the PRIs as a way of acquiring some legitimacy. Since the general move is towards channelising substantial funds directly to Panchayats, one of the main tasks of VOs at the village level is to see that the funds are properly used, that there is some transparency and more involvement of the poor in the decision-making process. But to be able to expect this from PRIs, the VOs need to set an example themselves. The tragedy is, VOs are refusing to set their own house in order, thus making themselves vulnerable to pressure and public criticism from outside".

In the 21st century, we have to ensure the following to make NGOs successful:-

- (a) Verification of the persons associated with NGOs in terms of their social back ground and interest in social service before re-

leasing grants-in-aid by the government and giving donations by the donors.

- (b) Clarity of purpose.
- (c) Contacts with the beneficiaries.
- (d) Previous achievements & record of social services.
- (e) Provision of special audit by the Accountant General in case of any doubt of misappropriation .
- (f) If an NGO is found to be fraudulent, persons associated with it should not be allowed to form another NGO.

When Mahatma Gandhi asked for the Bill

"Dr. Manibhai Desai became a disciple of Gandhi in 1945. In 1946, when he was 26, he took a vow of celibacy, pledging that he would devote his entire life to the service of the rural poor. Like Gandhi, he was concerned about economic sustainability and financial probity.

"This ethos is reflected in the story of a visit by Gandhi in 1946. In the middle of the visit, he was called away to Delhi for urgent discussions with the Viceroy, Lord Wavell, on the transfer of power from Britain to an independent government. Just before he left, he called Manibhai and asked for a bill. Manibhai asked him why he wanted such a thing, but Gandhi insisted. Manibhai worked out the cost of meals and accommodation, wrote a bill and Gandhi took out his purse and paid.

"Then he gave the bill back to Manibhai saying, '**now frame it and put it on your wall so that, if somebody comes with all sorts of claims about being a social worker, or a philanthropist who has supported us and they will not pay, you can show them this, and say that even Gandhi paid**'. After that, Manibhai insisted that everything had to be paid for and that the centre had to become economically self-sufficient."

भारत के भविष्य निर्माण में स्वाभिमानी इतिहास की भूमिका

— नीलम खरे

प्रसिद्ध इतिहासकार आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव का कथन है कि “इतिहास महज घटनाओं का लेखा-जोखा नहीं है, बल्कि वह वर्तमान को सुधारने और भविष्य का निर्माण करने का एक सशक्त जरिया है।” यह एक यथार्थ है कि गौरवमय इतिहास के पृष्ठ, हमें सांस्कृतिक मूल्यों का न केवल ज्ञान कराते हैं बल्कि हमारे भटकाव को रोककर हमें उत्थान की ओर उन्मुख भी करते हैं। इतिहास की परिभाषा एवं इतिहास के स्वाभिमानी पृष्ठ के कारण ही भारत सांस्कृतिक, आध्यात्मिक व मानवीय मूल्यों की दृष्टि से विश्ववन्द्य, विश्वगुरू रहा है। आर्यों के इस देश की सभ्यता-संस्कृति के आदर्शों व विशेषताओं में जहां एक ओर आध्यात्मिकता, आचारगत श्रेष्ठता, मानवीय मर्यादा, गरिमा, दया, करुणा, ममता, परोपकार, ब्राह्मण-नारी-गौ सुरक्षा के मूल्य विद्यमान हैं, तो वहीं इसमें सामाजिकता, देशभक्ति के पावन भावों के साथ ही त्याग, बलिदान, समर्पण, सत्य, आंतरिक शुद्धता, पारलौकिकता के साथ ही सद्भाव व सौहार्द्र की भावना भी सन्निहित है। भारतीय इतिहास अनेक स्वाभिमानी प्रसंगों व संदर्भों से परिपूर्ण है। चाणक्य की देशभक्ति व चंद्रगुप्त मौर्य की वीरता तथा सेल्यूकस जैसे यूनानी विजेता का मानमर्दन करना भारत के स्वाभिमानी इतिहास की धरोहर के कुछ मूल्यवान रत्न हैं। यह वास्तविकता है कि आर्यों ने ‘आर्य’ शब्द, जिसका कि अर्थ ही ‘श्रेष्ठ’ होता है अपनी श्रेष्ठता से सार्थक सिद्ध कर दिखाया। इतिहास के अध्ययन का तो सार ही है—“महत्वपूर्ण तथ्यों को चुनकर भविष्य का निर्माण करना।” अतएव आर्यों की स्वाभिमानी मूल्यधर्मिता व परंपरागतता हमें अनेक प्रकार से मार्गदर्शन देती है। फिरंगियों ने हमारे इतिहास को अनेक प्रकार से विकृत करने की चेष्टा की थी। उन्होंने हमारे पूर्वजों तथा इस देश की संस्कृति के निर्माताओं को बाहर से आया हुआ कहकर दुष्प्रचार अवश्य किया, परन्तु सत्य को अधिक देर तक असत्य नहीं ठहराया जा सकता और न ही सूर्य को अधिक देर तक बादल ढंक पाते हैं। इसलिए दूध का दूध पानी का पानी हो गया और सिद्ध हो गया कि आर्य इसी धरा के मूल निवासी थे।

वास्तव में हमारी धारणा अध्यात्मवादी है, जिसमें सदाचार, सत्कर्म के साथ ही संपूर्ण प्राणी मात्र के कल्याण का भाव विद्यमान है। यह एक तथ्य है कुछ इतिहासकारों ने भी हमारे स्वाभिमानी तथा गौरवमय इतिहास को धूमिल एवं विकृत करने की कुचेष्टा की है। वैदिककालीन श्रेष्ठता व स्वाभिमानी इतिहास वाले आर्यों ने चार वेदों, अठारह पुराणों, उपनिषदों, संहिताओं, स्मृति-ग्रंथों व महाकाव्यों का सृजन किया। इन समस्त ग्रंथों में सामाजिक मूल्य, धार्मिक, आदर्श, आध्यात्मिक पवित्रता, मानवीयता, व सदाचरण की संदेशमयता विद्यमान है, जिसका अनुकरण कर हम निश्चित रूप से अपने भविष्य को उज्वल बना सकते हैं। एक जाज्वल्यमान समाज का सृजन कर सकते हैं। श्रेष्ठ परंपराओं व आदर्शों को अपनाकर गतिशील, प्रगतिशील राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं।

कालिंगबुड ने इतिहास के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि “वस्तुतः इतिहास का क्षेत्र चिंतन का क्षेत्र है जो कि मानवीय कार्यों एवं उपलब्धियों की व्याख्या करता है।” महर्षि अरविन्द घोष का तो स्पष्ट कथन था कि “भारत के गौरवमय इतिहास ने जीवन की निरंतरता तथा संस्कारों की प्रवाहमयता में अत्यंत सार्थक भूमिका निभाई है। भारत के स्वाभिमानी इतिहास के कुछ स्तंभ पुरुष/महामानव आदि शंकराचार्य, मंडन मिश्र, गार्गी, मैत्रेयी, याज्ञवल्क्य, अनुसुइया, चाणक्य, चंद्रगुप्त मौर्य, महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध, चंद्रगुप्त विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, कुमारगुप्त, हर्षवर्धन, पृथ्वीराज चौहान, आदि अनेक ऐसी महान विभूतियाँ इस भारत वर्ष में हुई हैं, जिन्होंने इतिहास के पृष्ठों को न केवल स्वाभिमान, गरिमा व सम्मान से परिपूर्ण पृष्ठ दिए हैं, बल्कि इतिहास को जगमगा दिया है। इन सभी के साथ गौरव व आन-बान शान से परिपूर्ण प्रसंग व घटनाएं जुड़ी हुई हैं, जिनके आधार पर निश्चित रूप से एक नये समाज की रचना संभव है।

इतिहास की श्रेष्ठताओं का विस्मरण : एक अभिशाप : हमारे इतिहास के स्वाभिमानी गौरवपूर्ण पृष्ठों पर अनेक ऐसे व्यक्तियों के कार्य अंकित हैं, जिनमें उत्कृष्ट आदर्श समाहित हैं, जिनको आधार बनाकर हम मानवता, सामाजिकता व राष्ट्रीयता की दृष्टि से अनेक विशेषताओं को सहज ही धारण कर सकते हैं। परन्तु विडम्बना का विषय यह है कि हम अपने आदर्शों को न केवल विस्मृत करते जा रहे हैं बल्कि उन विभूतियों की श्रेष्ठताओं को भी अनदेखा करते जा रहे हैं। इन विभूतियों के त्याग, बलिदान, देशभक्ति, आत्मोत्सर्ग, तपस्या, साधना, सामाजिकता, वीरता, स्वाभिमान, मातृभूमि सेवा व्रत, मानवता, इंद्रियविजयता आदि गुणों का गौरवपूर्ण स्मरण कर उन्हें आचरण में धारण करके उज्वल भविष्य का निर्माण किया जा सकना सहज ही संभव है। पर यह अभिशाप ही माना जाएगा, कि हम हमारी विभूतियों और उनसे संबद्ध

गौरवशाली घटनाओं को विस्मृत करते जा रहे हैं। इसीलिए, अनगिनत समस्याएं व विकृतियां समाज में जन्म ले रही हैं। आज भौतिकवाद व पश्चिमवाद इसीलिए हावी है, क्योंकि हम भारतीय संस्कृति के आदर्शों को अनदेखा कर रहे हैं। अयोध्या के रघुवंशी राजकुमार श्रीराम तथा यदुवंशी श्रीकृष्ण ऐतिहासिक सत्य हैं। सारे ऐतिहासिक प्रमाण पत्र व सत्य समग्रता के साथ इन महा-विभूतियों के यथार्थ अस्तित्व का बोध करा रहे हैं तो भी अविवेकी अधर्मी लोग 'रामसेतु' को नकारने की महामूर्खता कर रहे हैं। समस्त समकालीन स्रोत, रामजी से संबंधित सारी घटनाओं को प्रमाणित सिद्ध कर, हमें असत्य पर सत्य की, अनीति पर नीति-दुराचार पर सदाचार की, अधर्म पर धर्म की और अज्ञान पर ज्ञान की विजयश्री के यथार्थ का बोध कराके हमारे भविष्य को सतपथ पर ले जाने का पावन कार्य संपन्न करना चाहिये।

महमूद गजनवी, मोहम्मद गौरी, बाबर, औरंगजेब, जनरल डायर, डलहौजी, लार्ड कर्जन जैसे आततातियों को हमारे देशभक्तों ने किस प्रकार से कराया जबाव दिया और दुर्गावती, लक्ष्मीबाई, राणा प्रताप, शिवाजी, भगतसिंह, ऊधम सिंह, सुभाषचंद्र बोस, तात्या टोपे आदि ने किस प्रकार से वीरता व देशभक्ति के चरम रूप को अपने कार्यों में प्रस्तुत किया, यह न केवल पठनीय है बल्कि अनुकरणीय भी है और ऐसे स्वाभिमानी महापुरुषों द्वारा सृजित स्वाभिमानी इतिहास ही हमारे भविष्य को एक नया एवं जाज्वल्यमान स्वरूप प्रदान कर सकता है। हमारा इतिहास हमें वतनपरस्ती व शहादत की शिक्षा देता है, वह हमारे सांस्कृतिक आदर्शों की ओर उन्मुख करता है तथा हमारे भविष्य को पश्चिम की आंधी से सुरक्षा के लिए कवच प्रदान करता है तथा हमें भौतिकवाद की भूलभुलैया में फंसने से भी सुरक्षित करता है। वर्तमान में हम स्वार्थी हो गए हैं। न तो हम में "परमार्थ" का भाव है, न ही सामाजिकता का आदर्श और न ही राष्ट्रियता का आवेग। इसीलिए आज स्वाभिमानी इतिहास से बहुत कुछ सीख लेकर, नया समाज एवं नया राष्ट्र सृजित करने की महती आवश्यकता है। आज त्याग, शहादत, बलिदान की तथा समाज, संस्कृति व वतन के लिए नए जोश की जरूरत है। आज विचारों, चरित्र, आत्मसंयम, नारी-सम्मान व मर्यादा तथा सदाचरण की प्रखर आवश्यकता है। यह कार्य तभी संभव है। जब स्वाभिमानी इतिहास के प्रसंगों को पढ़कर उनके आदर्शों को व्यवहार में उतारा जाए।

आज का युवा (नारी-पुरुष दोनों) वस्तुतः चारित्रिक दृष्टि से भटक रहा है, इसलिए उसे विवेकानंद को पढ़ना होगा, और लक्ष्मीबाई, शिवाजी, महाराणा प्रताप जैसा बनना होगा। डॉ. राधाकृष्णन का कथन था कि "किसी भी देश का इतिहास उसकी स्मृति होता है, जिस प्रकार किसी भी व्यक्ति के विकास एवं उन्नति के लिए सशक्त स्मरण शक्ति का होना आवश्यक है, उसी प्रकार देश अथवा

राज्य के विकास के लिए उसके इतिहास का महत्व होता है।" डॉ. ईश्वरी प्रसाद की मान्यता है कि 'वर्तमान को अतीत की रोशनी में देखने का अर्थ है अतीत को वर्तमान की रोशनी में देखना।' इतिहास और विशेषकर स्वाभिमानी इतिहास का अध्ययन निश्चित रूप से भविष्य निर्माण में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है। राष्ट्रीय मूल्यों की दृष्टि से, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से, शैक्षणिक मूल्यों की दृष्टि से एवं व्यवसायिक आदर्शों की दृष्टि से निश्चित रूप से स्वाभिमानी व गौरवशाली इतिहास के अध्ययन का वृहत महत्व है।

हमें कभी भी अपने स्वाभिमानी इतिहास को विस्मृत नहीं करना चाहिए। यदि हमने अपने स्वाभिमानी इतिहास को विस्मृत किया तो आने वाला समय और पीढ़ियाँ हमें कदापि क्षमा नहीं करेंगी, क्योंकि तब हम उज्ज्वल आगत का निर्माण करने के अवसर पर कर्तव्य पूर्ति से च्युत होकर अंधकारमय आगत का निर्माण करके, अपना सब कुछ समाप्त करने की भूल कर बैठेंगे। □

धर्म, कला एवं व्यापार

धर्म अध्यात्म का विषय है और कलाएँ संसार का। लेकिन कलाओं को धर्म से संरक्षण मिलता है और धर्म को कलाओं से आत्मा मिलती है। स्थापत्य (भवन, कंगूरे, परिसर), संगीत (गायन, वादन), काव्य (भजन) और नृत्य, इन्हीं कलाओं से धर्म का (मन्दिर का) वातावरण बनता है। इसलिए धर्म के केन्द्र और कलाओं के केन्द्र हमेशा साथ-साथ होते हैं और दोनों के केन्द्र वहीं होते हैं जहां व्यापार के केन्द्र होते हैं। व्यापार अचल सम्पत्ति पर नहीं, चंचल पूंजी पर निर्भर होता है; वह संग्रह की बजाय उपभोग से विकसित होता है; वह भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक चेतना के विरोधाभासी रूपों में जीवित रहता है। इसीलिए व्यापारिक केन्द्रों में धर्म और कला का विकास होता है, उनकी स्वतन्त्र परम्पराएं भी बनती हैं और वे परस्पर-प्रेरक भी होते हैं। यहीं यह बात भी स्पष्ट करनी चाहिए कि संस्कृति आध्यात्मिक नहीं होती, विषय आध्यात्मिक होते हैं। आध्यात्मिक विषय उच्चतर संस्कृति का निर्माण करते हैं क्योंकि वे तात्कालिकता और उपयोगिता का अतिक्रमण करते हैं।

व्यक्तित्व के चार सोपान

समझदारी, जिम्मेदारी, ईमानदारी और बहादुरी के इन चार उपादानों से समग्र और संतुलित व्यक्तित्व बनता है। इन्हें निर्धारित करने वाले चार तत्त्व आई.क्यू., पी.क्यू., ई.क्यू. और एस.क्यू. हैं। जितने परिणाम में इन्हें जिसमें पाया जायेगा, उसे उसी स्तर का व्यक्ति समझा जाएगा।

व्यक्तित्व को यदि परिभाषित करना हो तो हमें कई बातों पर ध्यान देना होगा। सर्वप्रथम यह देखना होगा कि हममें समझदारी किस हद तक है। कार्य के प्रति हमारी लगन और निष्ठा कितनी है। भावनाओं और संवेदनाओं का स्तर क्या है एवं मानवीय गुणों और नैतिक मूल्यों में से कितनों को हम किस परिमाण में धारण किए हुए हैं। मोटे तौर पर समग्र व्यक्तित्व इसी परिधि में आता है और यह बताता है कि सामने वाला आदमी कैसा और किस चरित्र का है।

आधुनिक अध्येताओं और मनीषियों ने व्यक्तित्व निर्धारित करने के चार तत्त्व गिनाए हैं—आई.क्यू. (इंटेलेजेंस कोशंट या बुद्धिलब्धि), पी.क्यू. (पैशन कोशंट या धुन), ई.क्यू. (इमोशनल कोशंट या भावनात्मक लब्धि) एवं एस.क्यू. (स्प्रिचुअल कोशंट या आध्यात्मिक लब्धि)। इन लब्धियों के आधार पर ही कोई व्यक्ति बड़ा-छोटा, भला-बुरा कहलाता और सम्मान-अपमान का भागी बनता है। जिनमें ये लब्धियां जितने अंशों में पाई जाती हैं, उनकी सफलता उन-उन क्षेत्रों में उसी मात्रा में सुनिश्चित समझी जाती है। छोटी लब्धि वाले लोग प्रायः असफल माने जाते हैं और जीवन में कोई उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल नहीं कर पाते। इसके विपरीत वे लोग हैं, जिनकी कोशंट (लब्धि) बढ़ी-चढ़ी है। वे औसत से ऊंचे दर्जे के होते हैं और उसी के अनुरूप उन्हें अपने कार्यों के परिणाम मिलते हैं।

आई.क्यू. व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता की मापक है। साधारण तौर पर किसी के बौद्धिक पैनेपन का अंदाज इसी के द्वारा लगाया जाता है। यह पूर्णतः तर्क पर आधारित होती है और बताती है कि सामने वाला आदमी कितना बुद्धिमान है, पर कई बार यह निर्धारण गलत सिद्ध होता है। संसार में कई व्यक्ति ऐसे भी पाए गए हैं जिनकी आई.क्यू. तो उच्च थी और वे गणित के कठिन से कठिन सवालों को आसानी से हल कर लेते थे। पर जब साधारण कक्षा के अन्य प्रश्न उनके सामने रखे गये तो वे बगलें झांकने लगते थे। ऐसे में उन्हें सही-सही बुद्धिमान या मूर्ख कहना उचित नहीं। वे एक

साथ बुद्धिमान भी थे और मूर्ख भी। मूर्खियों ने उनकी इस विचित्र स्थिति को ठीक-ठीक अभिव्यक्त करने के लिए नया शब्द गढ़ा और उन्हें 'ईडियट जीनियस' का संबोधन दिया। इसके बाद से बुद्धि-मापन के इस तरीके पर अनेक बार सवाल उठाए गए और आपत्ति व्यक्त की गई।

सचाई तो यह है कि औसत आदमी कभी भी सर्वज्ञ नहीं होता। वह किसी एक क्षेत्र में विशेषज्ञ हो सकता है, उसमें उसे विद्वता हासिल हो सकती है, पर दूसरे अन्य क्षेत्रों में उसका ज्ञान साधारण ही होता है और कभी-कभी तो उससे भी कम। ऐसे में बुद्धिलब्धि का उपयोग कर किसी व्यक्ति को विद्वान और अनपढ़ किसान को मूर्ख सिद्ध कर देना उचित नहीं होगा। कृषक को कृषि की बारीकियों के संबंध में जितनी जानकारी होती है, उतनी एक इंजीनियर को नहीं। वह अपने क्षेत्र का विशेषज्ञ होता है। उसे मूर्ख कैसे कह सकते हैं? बुद्धिलब्धि उसे मूर्ख बताती है, पर यथार्थ में यह ज्ञानवान होता है। यह अंतर्विरोध ही बुद्धिलब्धि पर संदेह व्यक्त करने के लिए पर्याप्त है। ऐसे कितने ही उदाहरण दिए जा सकते हैं, जो बुद्धिलब्धि को शक के दायरे में ला खड़े करते हैं, लेकिन यहां उद्देश्य उसकी उपयोगिता पर प्रश्नचिन्ह लगाना नहीं है। आपत्ति सिर्फ उसके निर्धारण के तरीके को लेकर है। वह यदि सही हो जाए तो बुद्धिलब्धि एक उपयोगी तत्त्व साबित होगा और उससे उस मस्तिष्कीय क्षमता का ठीक-ठीक निर्धारण हो सकेगा, जिसे 'समझदारी' कहते हैं। जो जितना समझदार होगा, उसकी बुद्धिलब्धि उतनी अधिक होती है। समझदारी के कारण ही आदमी विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति करता और सम्मान पाता है। सफलता समझदारी की देन है। व्यक्ति में यदि समझदारी का मुद्दा कम हो तो हर क्षेत्र में उसको असफलता ही हाथ लगेगी। 'आई.क्यू.' हममें यह समझ पैदा करती है कि किस कार्य को किस ढंग से, कब करने में वह उपयोगी और लाभप्रद सिद्ध होगा। इसलिए व्यक्तित्व को समृद्ध बनाने की दिशा में इसे पहला तत्त्व माना गया है। 20वीं सदी के प्रारंभ में जब यह अवधारणा सामने आई, तो लोगों ने बड़े उत्साह के साथ इसका स्वागत किया, पर इन दिनों वह उत्साह धीरे-धीरे ठंडा पड़ता जा रहा है, क्योंकि अब ज्ञात हुआ है कि आई.क्यू. के साथ यदि पी.क्यू. ई.क्यू. तथा एस.क्यू. का प्रतिशत ऊंचा न हुआ, तो वह आई.क्यू. फिर बहुत उपयोगी सिद्ध न हो सकेगी। अतएव आई.क्यू. के साथ उसके सहयोगी तत्त्वों का होना बहुत जरूरी है।

पी.क्यू. अर्थात् 'पैशन कोशंट': इसे 'धुनलब्धि' कहते हैं। किसी कार्य के प्रति व्यक्ति में लगन, धुन और निष्ठा कितनी है, यह पी.क्यू. द्वारा निर्धारित होता है। हम कर्तव्यनिष्ठ हैं या नहीं और यदि हैं, तो कार्य के प्रति हममें कितना समर्पण है, यह हमें एक जिम्मेदार व्यक्ति सिद्ध करता है और ऐसे लोगों की श्रेणी

में ला खड़ा करता है, जिन्हें 'कर्तव्यपरायण' कहते हैं। कर्तव्यपरायणता एक ऐसी विभूति है, जो हमें प्रगति की ओर ले जाती है। अवगति अकर्मठता का नाम है। जो कर्मठ नहीं होगा और कार्य करने में पूर्ण मनोयोग नहीं लगाएगा, उसका हर काम अयोग्य व्यक्तियों के समान होगा एवं उससे कोई बहुत बड़ी उम्मीद नहीं की जा सकती। उसका जीवन विफल लोगों के सदृश्य होता है। इसके विपरीत लगनशील व्यक्तियों की चतुर्दिक प्रशंसा होती है। सब उसका सहयोग करते और साथ निभाते हैं। असहयोग तो वहां मिलता है, जहां कर्तव्य के प्रति उपेक्षा बरती जाती है। प्रोफेसर अरिंदम चौधरी अपनी पुस्तक 'काउंट योर चिकेन बिफोर द हैच' में धुन लब्धि की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि यदि कोई यह सोचता है कि उक्त कार्य वह कर सकता है, तो उसको क्रियान्वित करने में उसे तुरंत जुट जाना चाहिए। लक्ष्य के प्रति समर्पण इस बात का सूचक है कि हमने कितनी गंभीरतापूर्वक प्रयत्न किए हैं। जहां गम्भीर प्रयास होंगे, परिणाम वहीं उत्साहवर्द्धक हो सकते हैं, किन्तु कई बार एकनिष्ठ उद्यम के बावजूद भी सफलता कोसों दूर बनी रहती है। वे कहते हैं कि ऐसे व्यक्तियों को असफल नहीं कहा सकता क्योंकि उसने प्राणपण से प्रयास किए हैं। उसमें किसी प्रकार की कोताही नहीं बरती। उदाहरण स्वरूपवे चे गुएवरा और नेताजी सुभाषचंद्र बोस के नाम गिनाते हैं। दोनों ही क्रांतिकारी थे। दोनों ने ही देश को आज़ाद कराने का सपना संजोया था। यद्यपि वे लक्ष्य प्राप्ति में सफल न हो सके, इतने पर भी उनकी गणना सफल व्यक्तियों में होती हैं। उनका पैशन कोशंट अति उच्च था।

पैशन कोशंट के बाद दूसरा पी. क्यू अर्थात् परसेवरेन्स कोशंट आता है। **परसेवरेन्स कोशंट अर्थात् बाधाओं के बावजूद सतत प्रयत्नशील रहने का माहा।** कई व्यक्तियों की आंतरिक संरचना ही ऐसी होती है कि वे निरंतर बाधाओं से टकराते रहते हैं और इस क्रम में टूटते नहीं और न ही चिंतित और उदास होते हैं। उन्हें ऐसे विघ्नों से बल मिलता है एवं पराक्रम बढ़ता है। वे चाहते हैं कि ऐसे तनाव के क्षण बराबर उनके जीवन में आते रहें और वे अपने पुरुषार्थ से उन्हें परास्त करते रहें। उन्हें इन क्षणों में हताशा नहीं, आनंद का अहसास होता है। जिन्हें तनाव में जीने का मज़ा आ गया है और जो इस कला को जानते हैं, वे ही बता सकते हैं कि उन्हें ऐसे पलों में कितनी ऊर्जा मिलती है और इन अवसरों पर वे कितने ओजस्वी बन जाते हैं।

पी. क्यू अर्थात् जिम्मेदारी। जो जिम्मेदार हैं, कार्य के प्रति उनकी ही अपूर्व निष्ठा हो सकती है। वे यह नहीं देखते कि उन्हें सौंपा गया कार्य सरल है या कठिनाइयों से भरपूर। हर स्थिति और परिस्थिति में अड़चनों को झेलते हुए उन्हें पूरा करने के लिए वे सदा संलग्न होते हैं। जिम्मेदार व्यक्तियों की यह पहचान है कि वे कार्य को कल के लिए नहीं टालते। न ऐसा करते देखे जाते हैं कि अपना दायित्व

दूसरों पर डालकर स्वयं मौज मनाएं। उनकी कर्तव्यपरायणता उन्हें कभी सुस्त नहीं होन देती, न प्रमाद बरतने देती है।

ई. क्यू. या भावात्मक लब्धि व्यक्तित्व का तीसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जो हमें बतलाता है कि किस परिस्थिति में व्यक्ति कैसी प्रतिक्रिया करेगा। यह भली और बुरी दोनों हो सकती हैं, पर उच्च ई. क्यू. वाले लोग हमेशा संतुलित प्रतिक्रिया करते हैं। वे कठिन परिस्थितियों में घबराते नहीं, इसलिए ऐसे समय में उनमें खीझ, निराशा, भय, क्रोध जैसे निषेधात्मक तत्त्व नहीं दिखलाई पड़ते।

नब्बे के दशक के मध्य में मूर्द्धन्य तंत्रिका विज्ञानी डेनियल गोलमैन ने इस तत्त्व से संसार को परिचित कराया। उनका कहना है कि यह ई. क्यू. ही है, जो हमें स्वयं की और दूसरों की भावनाओं के प्रति सचेत करती है। इसके अतिरिक्त सुखद और दुखद परिस्थितियों में दक्ष प्रतिक्रिया की योग्यता प्रदान करती है। उनका ऐसा मानना है कि आई. क्यू. के उपयोग के लिए ई. क्यू. एक बुनियादी ज़रूरत है। उसके बिना आई. क्यू. का सीमित उपयोग ही संभव है। इसे उसने प्रयोगों द्वारा सिद्ध भी कर दिखाया। देखा गया कि मस्तिष्क का जो हिस्सा महसूस करता है, उसे यदि क्षतिग्रस्त कर दिया जाए तो दक्षतापूर्वक चिंतन करने की शक्ति कमजोर पड़ जाती है। यह इस बात का प्रमाण है कि ई. क्यू., आई. क्यू. को प्रभावित करती है।

महापुरुषों की ई. क्यू. काफी अधिक होती है। यह हमें अपनी भावनाओं पर काबू पाने की प्रेरणा देती है और बतलाती है कि विपरीत परिस्थितियों में किस प्रकार संयमित रहा जाए। इसे 'ईमानदारी' कहना चाहिए। हमारा ईमानदारी का प्रयास ही हमें ऊंचा उठाता और आगे बढ़ाता है। भावनाओं को परिष्कृत करने के संदर्भ में यह यदि लागू नहीं हुआ, तो अध्यात्म-पथ का अनुसरण करने के बावजूद भी हम उस दिशा में तिल जितना भी आगे नहीं बढ़ सकेंगे। इसलिए ईमानदारी को न सिर्फ अध्यात्म का वरन् भौतिक जीवन का भी मूल कहा जाना चाहिए। इसमें यदि किसी प्रकार की कमी हुई तो हमारी प्रगति प्रभावित होगी और बाधित भी। ई. क्यू. उच्च भाव संपन्न बनाकर सच्चे अर्थों में ईमानदार बनने के लिए प्रेरित करती है।

व्यक्तित्व का अंतिम और उच्चस्तरीय सोपान एस. क्यू. कहलाता है। यह आदमी को आध्यात्मिक बनने की प्रेरणा देता और बुद्धि को चिंतन का एक नया आयाम प्रदान करता है। उच्च आत्मिक लब्धि से युक्त व्यक्ति की सोच सृजनात्मकता से ऐसी ओत-प्रोत होती है कि निषेधात्मक विचारधारा उसका स्पर्श तक नहीं कर पाती। दूसरे शब्दों में, इसी को आध्यात्मिक मनुष्य कहते हैं। अध्यात्म व्यक्ति को खरे सोने की तरह इतना प्रखर और अंतर को ऐसा सुंदर बना देता है, जिसकी उपमा अनुपम से दी जा सके। उसका चिंतन, चरित्र और व्यवहार उत्कृष्ट हो

जाता है। अंतस् इतना कोमल हो जाता है कि दूसरों की पीड़ा से द्रवित हो उठता है। अहंकार का उसमें नामोनिशान नहीं होता। वह स्वार्थपरता से हमेशा दूर रहता है। दूसरों के हित में ही अपना हित समझता है और अपना अहित करके भी दूसरों का हित साधन करता है। वह संपत्ति को कुबेर की तरह जोड़ने में विश्वास नहीं करता, उसे लुटाने में आनंद की अनुभूति करता है। उसका एक ही लक्ष्य होता है—सुख बांटो, दुःख बंटो। इससे उसे अंतराल में शांति और शीतलता का ऐसा अनुभव होता है, मानो साक्षात् गंगा का अवतरण हो गया हो। यह सब उच्च आत्मिक लब्धि से संपन्न व्यक्ति की विशिष्टताएं हैं।

आत्मिक लब्धि को सर्वप्रथम डाना जोहर और इयान मार्शल ने परिभाषित किया। वे अपनी पुस्तक 'स्पिरिचुअल इंटेलीजेंस-दि अल्टीमेट इंटेलीजेंस' में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए लिखते हैं कि आध्यात्मिक विचारधारा को संचालित करने वाला मस्तिष्क में एक केंद्र होता है। इसका नाम 'गॉड स्पॉट' दिया गया है, जिसकी खोज मूर्द्धन्य तंत्रिकाशास्त्री वी. एस. रामचंद्रन ने नब्बे के दशक में कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी में की। यह केंद्र मस्तिष्क के टेम्पोरल लोब्स वाले हिस्से में स्थित होता है। अध्ययन के दौरान जब आध्यात्मिक चर्चाओं में संलग्न व्यक्ति के मस्तिष्क की पॉजीट्रॉन एमिशन टोपोग्राफी द्वारा स्कैनिंग की गई, तो उक्त भाग प्रकाशित पाया गया, जो सिद्ध करता था कि वह हिस्सा उस समय सक्रिय था। इस 'गॉड स्पॉट' के द्वारा लेखक द्वय यह तो सिद्ध नहीं कर सके कि भगवान का अस्तित्व है या नहीं, पर वे इस निश्चय पर सुनिश्चित तौर पर पहुंच गए कि मस्तिष्क की प्रोग्रामिंग उस अंतिम प्रश्न को जानने की दृष्टि से की गई है, जिसकी जिज्ञासा हर दार्शनिक को रहती है कि वह कौन है, कहां से आया है और अंततः कहां चला जाएगा।

आत्मिक लब्धि को इन प्रश्नों के उत्तर पाने की दिशा में प्रारंभिक चरण कहा जा सकता है। जिनकी एस. क्यू. ज्यादा होती है, देखा गया है कि उनमें इस प्रकार के गूढ़ प्रश्नों के प्रति उत्कंठा भी अत्यधिक होती है। इन सवालों का वास्तविक हल अध्यात्म ही दे सकता है, इसलिए ऐसे व्यक्ति आध्यात्मिक होते हैं। सच्चे अर्थों में इन्हें 'बहादुर' कहेंगे।

- संकलित



भारतीय शिक्षा का स्वर्णिम अतीत

— हृदयनारायण दीक्षित

प्राचीन भारत की शिक्षा मुक्ति का मार्ग थी। गांधी जी भारतीय शिक्षा के सत्य-आग्रही थे। प्राचीन भारत के विद्यालय आचार्य परिवार थे, सो गुरुकुल कहलाते थे। दुनिया के किसी भी राष्ट्र में निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था का भारत जैसा आदर्श नहीं मिलता। संविधान संशोधन के बावजूद छोटे बच्चों की निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था 21वीं सदी में दिवास्वप्न है। लेकिन पूर्व काल में शिक्षा देना एक पवित्र कर्तव्य था। आचार्य इसीलिए 'देवो भव'-देवतुल्य थे। गुरु दक्षिणा शिक्षा समाप्ति का अनुष्ठान था। याज्ञवल्क्य ने शिक्षा समाप्ति के पूर्व जनक से कोई भी उपहार स्वीकार नहीं किया। शिष्य द्वारा आचार्य को समर्पित ऐसी भेंट स्वैच्छिक थी। यह पारिश्रमिक का विकल्प नहीं थी।

बृहस्पति स्मृति के अनुसार विद्यादान पवित्रतम कर्तव्य था और भूमिदान से भी श्रेष्ठ था। गरीबी के आधार पर किसी भी छात्र को प्रवेश न देना निंदनीय था। आचार्य, विद्यार्थी, अभिभावक, समाज और राजा आदर्श शिक्षा के संचालन को 'पवित्र कार्य' मानते थे। समाज सजग और जागरूक था। छात्र भिक्षा मांगते थे। ऐसी भिक्षा देने से इंकार करना पाप माना जाता था। गोपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख है। उत्सवों-पर्वों के अवसर पर योग्य विद्यार्थी और आचार्य समाज द्वारा सम्मानित किए जाते थे। तक्षशिला में ऐसे सम्मान कार्यक्रम अक्सर होते थे इसके ऐतिहासिक प्रमाण हैं। जातकों में ऐसी अनेक कथाएं हैं।

फाह्यान 5वीं सदी में भारत आया था। उसके यात्रा विवरणों में समाज द्वारा शिक्षा तंत्र को आर्थिक सहायता देने के उल्लेख हैं। 'पृथ्वीराज विजय' (10वीं सदी) में अजमेर के आसपास अनेक शिक्षा संस्थाओं के उल्लेख हैं। 'कथासरितसागर' के अनुसार विश्वविद्यालय को धनिक नागरिकों द्वारा आर्थिक सहयोग दिया जाता था। संपन्न लोग शिक्षा संस्थाएं भी बनाते थे। अपने परिजनों की स्मृति में शिक्षण संस्थाएं चलाने की परंपरा बहुत प्रतिष्ठित थी। वेद, उपनिषद् और ऐसा ही ढेर सारा वैज्ञानिक, सामाजिक साहित्य पढ़ाने में जनसामान्य की रूचि थी लेकिन राजा भी पीछे नहीं थे। शिक्षा देना राज कर्तव्य था। महाभारत, अर्थशास्त्र, शुक्रनीति, याज्ञवल्क्य स्मृति और मनुस्मृति ने शिक्षा व्यवस्था को राजा का मुख्य कर्तव्य बताया है।

नालंदा में गुप्त राजाओं का सहयोग था। विक्रमशिला की स्थापना परमार राजा धर्मपाल ने की थी। राजा भोज ने धार में भोजनशाला की स्थापना की थी। चौहान

राजा विग्रह राज ने श्रावस्ती में विद्यालय के साथ मंदिर भी बनाया था। अशोक, कनिष्क, चन्द्रगुप्त (द्वितीय) हर्ष, धर्मपाल, भोज आदि राजा शिक्षा व्यवस्था में रुचि के लिए प्रख्यात हैं। नालंदा विश्व विख्यात शिक्षा केन्द्र था। चीनी यात्री हुएनसांग के अनुसार नालंदा के लिए 500 व्यापारियों ने 10 कोटि स्वर्ण मुद्राएं देकर जमीन खरीदी थी। अनेक राजपरिवारों ने भी नालंदा को सहायता दी थी। ईत्सिंग ने नालंदा के लिए भूराजस्व का एक बड़ा हिस्सा देने का भी उल्लेख किया है।

प्राचीन शिक्षा व्यवस्था राजपोषित होने के बावजूद राज नियंत्रित नहीं थी। अंग्रेजी प्रभाव वाली आधुनिक शिक्षा व्यवस्था राजपोषित है, वित्तविहीन भी है लेकिन दोनों ही व्यवस्थाओं में राज्य का नियंत्रण है। सरकारें बताती हैं कि आर्य भारत पर हमला करके यहां घुस आये थे। देश के अधिकांश परिश्रमी शोधकर्ता, विद्वान व प्रोफेसर ऐसा नहीं मानते। आधुनिकतम शोधों के भी निष्कर्ष हैं कि आर्य भारत के ही मूल निवासी हैं। लेकिन सरकारें आर्यों को हमलावर ही बताती हैं, विश्वविद्यालय भी यही पाठ पढ़ाते हैं। प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था राज नियंत्रण से मुक्त थी। शिक्षा व्यवस्था चलाना राज और समाज का कर्तव्य था, अध्ययन-अध्यापन के विषय तय करना आचार्य कुल का उत्तरदायित्व और अधिकार था। प्राचीन भारतीय शिक्षा को अंग्रेजी चश्मे से पढ़ने वाले विद्वान राजतंत्र में शिक्षा विभाग न पाकर निराश होते हैं। वस्तुतः यह पिछड़ेपन की नहीं स्वायत्तता की ही निशानी है। शिक्षा राजव्यवस्था से मुक्त थी, मुक्ति का साधन थी। यह आतताई राजा के विरुद्ध विद्रोह का उपदेश देती थी।

मध्यकालीन यूरोप की शिक्षा व्यवस्था संगठित चर्च के नियंत्रण में थी। भारत में शिक्षा का लक्ष्य 'मुक्त मनुष्य' का निर्माण करना था- 'सा विद्या या विमुक्तये'। यूरोप की शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य आस्थावादी ईसाई समाज गढ़ना था। ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज आदि संस्थाएं भी राज आदेशों या संसदीय कानूनों से नहीं बनीं। भारत की प्रेरणा से विद्वानों ने ही ऐसी संस्थाएं गढ़ीं लेकिन चर्च का प्रभाव था। यूरोप की शिक्षा व्यवस्था 19वीं सदी तक चर्च और निजी घरानों के अधीन ही थी। इंग्लैंड में पहली बार सन् 1932 ई. में प्राइमरी शिक्षा के लिए राजकोष से 2000 अमेरिकी डालर का प्रबंध हुआ। फ्रांस ने राज्य क्रान्ति के बाद 1788 में यही काम शुरू किया। यूरोप में राजपोषण का यही कार्य सबसे पहले जर्मनी में शुरू हुआ। भारत के राजा-महाराजा, समाज के अग्रणी महाजन शिक्षा व्यवस्था को लेकर वैदिक काल से ही सजग और सक्रिय रहे हैं। भारत में आचार्य कुल की अति प्राचीन परम्परा है। यह तथ्य इतिहास में उपलब्ध है। यह प्राचीन महाकाव्यों में है। यह पुराणों, ब्राह्मणों में है। उपनिषद् दर्शन का विकास ही गुरुकुलों, आश्रमों में हुआ था। प्रश्न, प्रतिप्रश्न, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और

सतत् जिज्ञासा का भारतीय वातावरण समूची दुनिया के लिए अध्ययन और शोध की प्रेरणा है। गांधी जी स्वाभाविक ही इस पर मोहित थे।

कुछेक विद्वान भारतीय शिक्षा के विकास का श्रेय अंग्रेजी राज को देते हैं। अंग्रेज ऐसे ही थे तो उन्होंने अपने देश और प्रभाव क्षेत्र में 1800 ई. के पहले भारत जैसी दार्शनिक और वैज्ञानिक शिक्षा पद्धति का विकास क्यों नहीं किया ? अंग्रेजी राज को श्रेय देने वाले विद्वानों को प्रख्यात गांधीवादी चिन्तक धर्मपाल द्वारा लिखित 'ब्यूटीफुल ट्री' पढ़ना चाहिए। धर्मपाल जी ने अंग्रेजी राज द्वारा संकलित आंकड़े ही परिश्रमपूर्वक खोजे हैं। सर थामस मुनरो ने 2 जुलाई 1922 के दिन भारतीय शिक्षा पर गहन सर्वेक्षण के आदेश दिये थे। आदेश के साथ जिलाधिकारियों को एक फार्म/प्रपत्र भी भेजा गया था। प्रपत्र के जरिए तब पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों के नाम, स्कूलों में शिक्षा का समय, मासिक या वार्षिक शुल्क के विवरण और विद्यालयों को मिलने वाली आर्थिक सहायता के स्रोतों की जानकारी मांगी गयी थी। पूछा यह भी गया था कि क्या विद्यालयों में धर्मशास्त्र, कानून और ज्योतिष जैसे विषय भी पढ़ाए जाते हैं? दर असल, अंग्रेजी सत्ता भारत पर मजबूत शासन चाहती थी। इसके लिए शिक्षा तंत्र पर वास्तविक नियंत्रण की जरूरत थी। इसके लिए पहले से जारी शिक्षा व्यवस्था और शिक्षा तंत्र के अध्ययन की आवश्यकता थी। अंग्रेजी राज ने इसीलिए सर्वेक्षण करवाया था। सर्वेक्षण से चौंकाने वाले नतीजे आये।

सर्वे का कार्य बाम्बे प्रेसीडेंसी में 1830 तक व मद्रास प्रेसीडेंसी में 1826 तक हुआ। बंगाल और पंजाब में भी सर्वे का काम हुआ। मद्रास प्रेसीडेंसी के 21 जिलों के सर्वेक्षण के अनुसार 1094 शिक्षण संस्थाएं 'कालेज' की हैसियत में थीं। वेद, विधि शास्त्र, तर्कशास्त्र और ज्योतिष अध्ययन के भी आंकड़े उत्साहवर्द्धक थे। सर्वे के अनुसार सभी वर्गों, जातियों, उपजातियों के हजारों छात्र अध्ययनरत थे। ईसाई मिशनरी (डब्लू एडम) का बंगाल सर्वेक्षण 'ए रिपोर्ट आन दि स्टेट आफ एजुकेशन इन बंगाल' चर्चा का विषय बना। बंगाल पर एडम की रिपोर्ट कई दफा छपी। अनेक सर्वेक्षणों के बाद विलियम एडम का निष्कर्ष था कि बंगाल और बिहार के प्रत्येक गांव में कम से कम एक स्कूल था। बंगाल और बिहार के 150748 गांव में 100000 स्कूल थे। बंगाल के प्रत्येक जिलों में कम से कम 100 उच्च शिक्षण संस्थाएं थीं। मुम्बई प्रेसीडेंसी और पंजाब के भी निष्कर्ष ऐसे ही थे। देश में लाखों स्कूल थे। वे प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली का विस्तार थे। अंग्रेजी राज ने ये स्कूल नहीं चलवाये थे। शिक्षा भारत में धर्म तत्व थी। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का साधन थी।

भारत का धर्म अंध आस्था नहीं है। इसका विकास वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हुआ। धर्म की शिक्षा का तात्पर्य यहां कर्मकाण्ड, पूजापाठ की विधि रटाना नहीं था।

धर्म का तात्पर्य यहां स्वयं का तथा स्वयं के स्वार्थ का निःश्रेयस और राष्ट्र का अभ्युदय था। स्वाभाविक ही गांधीजी द्वारा धार्मिक शिक्षा की भी पैरवी की गयी है। कुछेक विद्वान इसे अंध आस्थावादी बताते हैं लेकिन गांधी जी ने स्वयं धर्म की शिक्षा को नीति की शिक्षा बताया है। सबसे पहले तो धर्म की शिक्षा या नीति की शिक्षा दी जानी चाहिए। (हिन्द स्वराज पृष्ठ-92) यहां धर्म का मतलब नीति है। समाज को ठीक दिशा में ले जाने वाली आचार सारिणी का नाम 'नीति' है, इसी की परम्परा का नाम रीति है। रीति वैदिक कालीन 'ऋत' का ही देशज रूप है। भारत में धर्म का मतलब अंध आस्था नहीं है। यहां धर्म का अर्थ व्यक्ति या वस्तु का स्वभाव है। प्राणी या वस्तुएं स्वतंत्र सत्ता नहीं है। सृष्टि में परम्परावलम्बन है। इसलिए सृष्टि के प्रत्येक अणु-परमाणु में समूची सृष्टि की व्यापकता है। भारत का धर्म इसी व्यापकता की धारणा है और शिक्षा नीति इसी की सहचरी है।



वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत

- वरदान अग्रवाल

बेतहाशा बढ़ती जनसंख्या, जीवन की बढ़ती आवश्यकतायें तथा आम आदमी की बदलती जीवन शैली ने विश्व में ऊर्जा की खपत को आश्चर्यजनक ढंग से बढ़ा दिया है। परम्परागत ऊर्जा स्रोतों की सीमितता तथा उनके भण्डारों में हो रही दिन प्रतिदिन की कमी ने विश्व के सम्मुख एक चिन्ता खड़ी कर दी है तथा गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों को खोजने तथा उनसे ऊर्जा उत्पादन करने के विकल्प के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं छोड़ा है। वर्तमान में पूरे विश्व में कोयला व तेल ऊर्जा के मुख्य पारम्परिक स्रोत हैं तथा इनके निरन्तर दोहन से जहां ये स्रोत समाप्ति के कगार पर हैं वही इनके द्वारा अंधाधुंध उत्पादन से प्राकृतिक असंतुलन, पर्यावरण प्रदूषण, कार्बन डाई आक्साइड जैसी अनेक हानिकारक गैसों का उत्सर्जन व ग्लोबल वार्मिंग जैसी अनेकानेक समस्याएँ खड़ी हो गई हैं। वैकल्पिक ऊर्जा के रूप में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा व जल ऊर्जा जैसी अनेक विकल्पों का प्रयोग किया जा रहा है।

कभी रोटी, कपड़ा और मकान मानव जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं मानी जाती थी किन्तु बदलती परिस्थितियों ने उसे सुविधाभोगी बनाकर ऐश्वर्य से जीवन जीने का अभ्यस्त बना दिया है तथा उसकी पूरी दिनचर्या भौतिक साधनों पर आश्रित हो गई है। भोजन, प्रकाश, यातायात, आवास, स्वास्थ्य, मनोरंजन, दूरसंचार आदि सभी कुछ एवं कम्प्यूटर व अन्य भौतिक उपकरण ऊर्जा के बिना व्यर्थ तथा अनुपयोगी हैं। इन सभी ऊर्जा की खपत को असाधारण तरीके से बढ़ा दिया है। भारत में 2000-01 में प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत 374 किलोवाट प्रति वर्ष थी जो आज बढ़कर 602 किलोवाट हो गई है तथा 2012 तक इसकी खपत 1000 किलोवाट जाने का अनुमान है। दुनियां के विकसित देशों में प्रति व्यक्ति लगभग 10000 किलोवाट प्रतिवर्ष ऊर्जा की खपत होती है।

एक सर्वे के अनुसार 26 जून 2009 को दिन के बारह बजे विश्व में प्रति घंटे ऊर्जा की खपत 2,62,730 किलोवाट थी तथा इस दिन 42,700,193 बैरल कच्चा तेल निकाला गया। तेल भंडार में 1,302,173,210, 135 बैरल तेल शेष है। इसके पूर्ण दोहन में 15,502 दिन बचे हैं। अर्थात् 42 वर्ष बाद तेल की एक बूंद भी नहीं बचेगी। आज गैस का भंडार 1,158,646,220,102 बोए है। एक बोए एक बैरल के बराबर होता है जिसके समाप्त होने में 60,929 दिन अर्थात् 170 वर्ष ही शेष है।

सम्पर्क • सहयोग • संस्कार • सेवा • समर्पण

पढ़िये और पढ़ायें तथा भेंट करें

GYAN PRABHA
(QUARTERLY)

ज्ञान
प्रभा

त्रैमासिक

18

आगामी अंक
संस्कृति पर विशेष सामग्री

त्रैमासिक ज्ञान प्रभा के
आजीवन सदस्य बने।

सहयोग राशि वार्षिक
100/-

आजीवन 1500/-

कोयले के भंडार 4,490,881,040,005 बोए है जिसके समाप्त होने में 152099 दिन शेष है। अतः वह दिन दूर नहीं है जब दुनियाँ इस पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों से रिक्त हो जाएगी।

भारत में बिजली उत्पादन के लिये कोयले पर निर्भरता अधिक है। इसके प्रयोग से कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन भारी मात्रा में होता है और तेल की बढ़ती कीमतों तथा खत्म होते भंडारों ने वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों के प्रयोग के बारे में सोचने को विवश कर दिया है। यहां पर केवल 1.5% गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों का ही प्रयोग हो रहा है। वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों से बिजली बनाने में भी दो तिहाई भागीदारी तमिलनाडु की है जो सरकार द्वारा जागरूकता फैलाने से संभव हो सकी है। यहां पर उत्पादित कुल ऊर्जा में थर्मल पावर 64.6%, जल विद्युत 24.6%, परमाणु ऊर्जा 2.9% तथा पवन ऊर्जा में 1% की भागीदारी है। कुल उत्पादित ऊर्जा का 23% वितरण में नष्ट हो जाता है। उत्पादित ऊर्जा का औसत टैरिफ मूल्य 2.12 रु. प्रति यूनिट है।

कोयला आधारित बिजलीघर बनाने में सौर ऊर्जा पर आधारित बिजली घर बनाने से कम खर्च आता है किन्तु उत्पादन लागत में यह संयंत्र मंहगे पड़ते हैं। योजना आयोग ने 2006 में 'समग्र ऊर्जा नीति' प्रकाशित की थी जिसके अनुसार थर्मल पावर सबसे खराब है क्योंकि इससे बड़ी मात्रा में हानिकारक जहरीली गैसों का उत्सर्जन होता है तथा राख व गन्दा पानी निकलता है जो जंगल तथा वनस्पतियों को हानि पहुंचाता है। परमाणु ऊर्जा इससे बेहतर है क्योंकि इससे जहरीली गैसों का उत्सर्जन नहीं होता। रिपोर्ट में जल ऊर्जा को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि यह प्रदूषण रहित मानी गई है।

भारत ने हाल में अमेरिका के साथ परमाणु समझौता किया है। न्यूक्लियर ऊर्जा को गैर कार्बन उत्सर्जक मान कर ऊर्जा उत्पादन के लिए आगे बढ़ा जा रहा है जो अपेक्षाकृत मंहंगी प्रक्रिया है और इसके कच्चे माल के लिये हमें सदैव परावलम्बी रहना पड़ेगा। वर्तमान में देश में 14 परमाणु रियेक्टरों के द्वारा 2550 मेगावाट ऊर्जा का उत्पादन किया जा रहा है तथा 9 अन्य रियेक्टर निर्माणाधीन है जिनसे 4092 मेगावाट ऊर्जा का उत्पादन होगा।

सौर ऊर्जा:- गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों में सौर ऊर्जा प्रमुख है। एक अनुमान के अनुसार विश्व में जितनी मात्रा में सूर्य का प्रकाश उपलब्ध है यदि उसका प्रयोग बिजली उत्पादन में किया जाए तो वर्तमान में पूरे विश्व में बिजली की जितनी खपत है उससे 20 हजार गुना ज्यादा बिजली की उत्पादन किया जा सकता है। आई.ई.ए. सी. (इन्टरनेशनल एनर्जी एजेन्सी कमीशन) के अनुसार विश्व में सूर्य की ऊर्जा

संग्रहित करने के लिए लगभग 1800 लाख वर्गमीटर क्षेत्र उपलब्ध है जिससे 340 लाख सोलर सिस्टम लगाकर प्रति वर्ष 1,26,000 मेगावाट बिजली पैदा की जा सकती है जो 740 लाख बैरल तेल के उत्पादन से प्राप्त बिजली के बराबर होगी। सौर ऊर्जा के प्रयोग से प्रतिवर्ष 350 लाख टन कार्बन डाई आक्साइड के उत्सर्जन को रोका जा सकता है

ब्रिटेन में 2.5 लाख वर्ग मीटर में 62 हजार पैनलों से 175.6 मेगावाट बिजली का उत्पादन किया जा रहा है। यह उत्पादन 120 लाख लीटर तेल के बिजली उत्पादन के बराबर है तथा इससे 32656 टन कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन रुकता है। इस क्षेत्र में जर्मनी ब्रिटेन से आगे है। जर्मनी में 8804000 वर्गमीटर में 1171043 पैनलों से 4570 लाख लीटर तेल के बराबर बिजली का उत्पादन किया जाता है जिससे 12 लाख टन कार्बन डाईआक्साइड का उत्सर्जन रुकता है। चीन में सौर ऊर्जा का प्रयोग किया जा रहा है। सौर प्लेटों के निर्माण में भी चीन सबसे आगे है। चीन में 930 लाख वर्गमीटर में 227 लाख सौर पैनलों से 6369175000 लीटर तेल के बराबर बिजली का उत्पादन कर 174 लाख टन कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन रोका जा चुका है।

सूर्य ऊर्जा की क्षमता असीमित है। मनुष्य इसका कितना उपयोग कर पाता है यह उसकी क्षमताओं पर निर्भर करता है। सूरज की किरणों से बिजली पैदा करने की सरल तकनीकों के आविष्कार में वैज्ञानिक लगे हुए हैं। प्रयास यह है कि हर घर की छत पर सौर पैनल लगें। सौर ऊर्जा के क्षेत्र में 286 अरब डालर की पूंजी का निवेश हो चुका है।

पवन ऊर्जा :- सौर ऊर्जा के बाद गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों में पवन ऊर्जा का प्रयोग विश्व में किया जा रहा है। पूरे विश्व में प्रतिवर्ष 65 अरब किलोवाट पवन ऊर्जा का उत्पादन हो रहा है। इस ऊर्जा से अमेरिका के 60 लाख घरों की बिजली की आवश्यकता पूरी की जा सकती है। अमेरिका में 16 अरब किलो वाट बिजली का उत्पादन पवन ऊर्जा से किया जा रहा है जिससे 16 लाख घरों की बिजली की आवश्यकता पूरी की जा सकती है।

11 मेगावाट पवन टरबाईन से निकली ऊर्जा से 1500 टन कार्बन डाई आक्साइड, 6.5 टन सल्फर डाई आक्साइड, 3.2 टन नाइट्रोजन आक्साइड तथा 60 पौण्ड पारे के बराबर प्रतिवर्ष उत्सर्जन कम किया जा सकता है।

2007 में सर्वाधिक निवेश पवन ऊर्जा में किया गया। इसमें 502 अरब डालर का निवेश किया गया। पूरे विश्व में चीन इस क्षेत्र में भी अग्रणी है वह प्रतिवर्ष 66% की दर से विकास कर रहा है। अमेरिका में पवन ऊर्जा के संयंत्र लगाने के लिये बड़ी

कम्पनियां किसानों से जमीन किराये पर लेकर उससे उत्पादित बिजली के मूल्य का तीन प्रतिशत हिस्सा उन्हें देती है। एक हेक्टेयर जमीन से अनुमानतः जमीन के मालिक को 10 हजार डालर प्रतिवर्ष की आय होंगी जब कि मक्का की खेती से उसे मात्र तीन सौ डालर ही मिलते।

पवन ऊर्जा के क्षेत्र में ब्रिटेन शीर्ष पर है। यहां पर 404 मेगावाट बिजली का उत्पादन हवा के झोंकों से किया जाता है जिससे तीन लाख घरों की बिजली की आवश्यकता पूरी की जाती है। बिंड फार्म की अवधारणा भी 1991 में ब्रिटेन में आई। एक खास जगह पर बड़ी संख्या में टरबाईन लगाकर पवन ऊर्जा का उत्पादन करना बिंड फार्म की अवधारणा है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार ब्रिटेन में 155 परियोजनाओं में एक हजार नौ सौ टरबाईन पवन ऊर्जा का उत्पादन कर रही हैं। पवन ऊर्जा प्रदूषण रहित ऊर्जा का स्रोत है।

भारत में 45 हजार मेगावाट की पवन ऊर्जा की संभावनायें हैं किन्तु मात्र 1267 मेगावाट पवन ऊर्जा का उत्पादन किया जा रहा है। 13 राज्यों में 192 स्थानों को चिन्हित कर पवन ऊर्जा के लिए अच्छी संभावनायें तलाश की जा रही है।

जल ऊर्जा व अन्य स्रोत :- भारत में जल विद्युत का उत्पादन कुल ऊर्जा का लगभग 25% है। जम्मू काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, पश्चिम बंगाल, सिक्किम और अरूणाचल में जल विद्युत की अनेक परियोजनाएं चल रही है। पहाड़ों से निकलने वाली नदियों के प्रवाह से ऊर्जा उत्पादन किया जा रहा है। 300 से 500 मेगावाट तक के ऊर्जा उत्पादन के लिये केन्द्र सरकार व राज्य सरकारें जल परियोजनाएं लगा रही है। 2007-08 में 14811.35 मेगावाट ऊर्जा का उत्पादन कर 1002 करोड़ रु. का लाभ अर्जित कर सरकारी उपक्रम एन.एच.पी.सी. सबसे आगे है। उत्तराखण्ड में 150 से अधिक स्थानों पर जल ऊर्जा के उत्पादन की योजनाओं पर कार्य प्रारम्भ करने की प्रक्रिया शुरू कर दी गई है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि हमें परम्परागत ऊर्जा स्रोतों पर निर्भरता छोड़कर गैर परम्परागत वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का अपनाना होगा क्योंकि जीवन और प्रकृति की रक्षा करना हमारा पहला धर्म है। आने वाली पीढ़ी को स्वस्थ व सुखी बनाने के लिए पृथ्वी को प्रदूषण से मुक्त कर पर्यावरण की रक्षा करनी ही होगी और इस क्षेत्र में प्रभावी तथा कारगर कदम उठाने होंगे।



जीवन का आरंभ, मध्य तथा अंतिम भाग

— डा० उषा खोसला (यू.एस.ए.)

भौतिकवाद जीवन के मध्य भाग पर केन्द्रित है। अर्थात् यह मनुष्य की भौतिक उपलब्धियों को देखता है। जीवन में कैसा पद मिला, कितना धन अर्जित किया, कितना मान सम्मान मिला, कितना लम्बा चौड़ा परिवार का विस्तार है, कितना माल, जायदाद इत्यादि का संग्रह किया। अध्यात्मवाद का सम्बन्ध मनुष्य के आरंभ तथा अंत भाग से अधिक है और मध्य के भाग से कम है। अध्यात्मवाद मनुष्य को अपने भीतर उतरने का मार्ग प्रशस्त करता है। यह वह ज्ञान है जिससे मनुष्य यह जान जाता है कि वह कहां से आया है, उसे जीवन भर कैसी जीवन शैली अपनानी है तथा उसका अंत क्या है। वह यह जान जाता है कि आखिर इस धराधाम पर आया क्यों है, उसके जीवन का उद्देश्य क्या है और उस उद्देश्य को उसे पाना कैसे है। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि उसे जीवन में पद, धन तथा प्रतिष्ठा की प्राप्ति नहीं होती। जब मनुष्य का जीवन अध्यात्मवाद पर केन्द्रित होता है तो सांसारिक भोग, पद, पदार्थ छाया की तरह उसके पीछे-पीछे चले आते हैं। अध्यात्मिक मनुष्य कायर, आलसी तथा भयभीत नहीं है। वह परिश्रमी तथा मानवता के गुणों से भरा हुआ होता है।

अध्यात्मिक मनुष्य निष्काम जगत में काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार के कार्य करता दिखता है लेकिन भीतर से बिल्कुल शुद्ध होता है। ऐसा दिव्य परमात्मा का सेवक उस परमपिता की प्रमुख धारा से सदा जुड़ा रहता है। ऐसे परम पुरुषार्थी का जीवन आत्मा तथा परमात्मा में अपने आप को प्रतिष्ठित करने के लिये होता है ताकि वह आवागमन के चक्कर से छूट जाये। संसार में आना, कुछ समय रहना, कष्टों को भोगना फिर मृत्यु को प्राप्त हो जाना तथा फिर कर्मों के अनुसार नई योनि में प्रविष्ट हो जाना तो भयानक रोग है। अर्जुन ने महाभारत के युद्ध में करोड़ों हत्यायें कर डालीं। देखने में तो यह क्रोध की क्रिया लगती है। क्रोध के बिना हत्या हो कैसे सकती है। नहीं, अर्जुन तो निष्काम कर्मयोगी थे। वह तो कृष्ण भगवान के शरणापन्न थे। वह तो अपना सांसारिक कर्तव्य पालन कर रहे थे। योशेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ही उनके भीतर बैठकर बाण चला रहे थे। अर्जुन तो निमित्त मात्र थे। लेकिन लोगों की भौतिकवादी बुद्धि तथा आंखें यही समझ रही थी कि अर्जुन बाण चला रहे हैं। उसी प्रकार से विदेही राजा जनक को राज महल में न जाने कितने प्रकार के विषय भोग उपलब्ध थे। लेकिन भोग तो उनको छू ही नहीं सकते थे।

जो लोग केवल मात्र जीवन के मध्य के भाग पर ही केन्द्रित रहकर संसार की वासनाओं का शिकार बने रहते हैं वे संघर्ष का जीवन व्यतीत करते हैं एवं अंत में पाते कुछ भी नहीं। भौतिक जगत के पद, पदार्थ, प्राणी तथा प्रतिष्ठा की प्राप्ति बिना संघर्ष के हो ही नहीं सकती। इन सबको प्राप्त करके भी तनाव, चिन्ता, भय बना रहता है। जीवन में सन्तुष्टि और शांति इस प्रकार के एकांगी जीवन में नहीं हो सकती। मनुष्य को चाहिये कि अन्तरमन से वह परमात्मा से जुड़ा रहे तथा शरीर से जगत सम्बन्धी कार्यों का पालन करता रहे। जीवन के हर कृत्य को यह भगवान की सेवा ही बना ले। हानि हुई तो भगवान की, काम हुआ तो भगवान का। बीच में से अपने आपको हटा ले। स्वयं निमित्त मात्र बना रहे। इस प्रकार की जीवन शैली अपनाने से उसके सब कृत्य भगवान को अर्पण हो जाते हैं और मनुष्य भगवान के हाथ की कठपुतली बनकर उनकी की लीला स्थली में नाचता रहता है। इस प्रकार के जीवन से मनुष्य के योग तथा भोग दोनों ही सध जाते हैं। निरन्तर कर्त्तव्य करते रहने से मनुष्य की हर भौतिक आवश्यकता की पूर्ति होती रहती है।

वेदों ने भी मनुष्य को चेताया है कि हे मनुष्यों जीवन के आरंभ भाग में ही परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग पर चल पड़ो। किशोरवस्था तथा युवावस्था की प्रतीक्षा मत करो। मध्य भाग की प्रतीक्षा करना भोलापन है। मृत्यु का समय निश्चित नहीं है। ऐसा आवश्यक नहीं है कि मृत्यु बुढ़ापे में ही होगी। अकाल मृत्यु का शिकार मनुष्य किसी भी अवस्था में बन सकता है। यदि जीवन के आरंभिक भाग में अध्यात्मिक विद्या का अनुसरण नहीं किया, सत्पुरुषों की संगति में नहीं बैठे, सत्शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया तो मध्य भाग तथा अंतिम भाग में इस गूढ़ विज्ञान और दिव्य विद्या को समझना तथा जीवन में धारण करना कठिन है।

मनुष्य जीवन में सुखी ही रहना चाहता है। मनुष्य असीम मात्रा में असीम समय के लिये आनंद चाहता है। जीवन में दुःख कौन भोगना चाहेगा। आनंद इसलिये चाहता है कि वह आनंद कंद भगवान का अंश है। मनुष्य में दिव्य आनंद की चेतना की शक्ति है। आनंद चेतन तत्त्व है। आनंद जड़ तत्त्व नहीं है। संसार के भोगों से मिलने वाला सुख दिव्य आनंद नहीं है। यह तो स्वभाव में जड़ है। जब मनुष्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता है तो उसे क्षणिक सुख की अनुभूति होती है। शीघ्र ही यह सुख दुःख में परिवर्तित हो जाता है। भोजन कितना ही स्वादिष्ट क्यों न हो, संगीत कितना ही मधुर क्यों न हो, सुगन्ध कितनी ही अच्छी क्यों न हो स्पर्श कितना ही प्रीतिकर क्यों न हो, दृश्य कितना ही मनमोहक क्यों न हो। कुछ समय के पश्चात् सभी भोगों का रस समाप्त होने लगता है और अंत में परिणाम दुःखदायक हो जाता है। क्योंकि इन्द्रियों तथा मन की विषयों को भोगने की एक सीमा है। कुछ समय पश्चात् मन तथा इन्द्रिय थक जाती हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध यह संसार के विषय हैं। इनको भोगने वाले कान, त्वचा, चक्षु, जिह्वा तथा नासिका उपकरण हैं। मन को कई दार्शनिक छठी इन्द्रिय भी कहते हैं। क्योंकि मन सबसे अधिक वेगवान है। जिस ओर मन भागता है उसी का पीछा इन्द्रियां भी करती हैं। मन अपने आप को इन्द्रियों के माध्यम से ही सन्तुष्ट करता है। भले ही वह सन्तुष्टि क्षणिक होती है। कुछ ही समय पश्चात् मन फिर असन्तुष्ट हो जाता है और नया विषय ढूंढता है।

वर्तमान जीवन मनुष्य का पहला जन्म नहीं है। वह तो इस जगत में लाखों, करोड़ों बार पहले भी आ चुका है। महापुरुषों को सुना, सत्संग किया, मंदिर गया, सतशास्त्र पढ़े पर श्रद्धा के अभाव के कारण आध्यात्मिक शिक्षा को जीवन में धारण नहीं किया। अध्यात्मवाद की विद्या कंठस्थ करने के लिये नहीं हैं यह तो जीवन में उतारने के लिये है। जीवन में रूपान्तरण लाने के लिये एवं आत्मा तथा परमात्मा को जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिये इस विद्या को धारण करना आवश्यक है। तभी परम सत्य की अनुभूति की जा सकती है।

मनुष्य परमात्मा के दिव्य आनंद की अनुभूति करने की योग्यता लेकर ही पैदा हुआ है। वह मननशील प्राणी है तथा बुद्धि के स्तर पर प्रखर बुद्धि का स्वामी है। वह ऋषि परम्परा के बताये ज्ञान को सुन कर पढ़कर, समझकर, जीवन में धारण कर सकता है और अपने अनुभव से उस दिव्य आनंद के सागर के अमृत को पान कर सकता है। ऐसी योग्यता पशुओं में नहीं है। पशुओं की बुद्धि निम्न स्तर की है। पशु योनि में खाना, पीना तथा सोना तो है लेकिन साधना के मार्ग पर चलकर योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के दिव्य आनंद में डूबने की योग्यता नहीं है। मनुष्य योनि एक महान अवसर है। यदि जीवन भर खाने, पीने, सोने, धन तथा प्रतिष्ठा प्राप्ति के स्तर पर ही बैठे रह गये तो यह एक बहुत बड़ा घाटा है। न जाने मनुष्य जन्म फिर मिले, न मिले या कब मिले कोई नहीं जानता।

भले ही मनुष्य योनि हमारे पूर्व जन्मों के किये गये शुभ कर्मों का फल है लेकिन कार्यों का हिसाब किताब रखकर कर्मों का फल देने वाले तो पारब्रह्म परमात्मा ही हैं। यदि वह हमारे कर्मों का हिसाब न रखते तो हमें मनुष्य योनि कैसे मिलती। इसलिये इस देह की प्राप्ति परमात्मा की असीम कृपा का ही फल है। हमें जीवन के आरंभ, मध्य तथा अंत में एक संतुलन तथा समग्रता बनानी चाहिये। ऋषि परम्परा को त्याग कर मनुष्य जाति ने बहुत कुछ खो दिया है। अब भी समय है कि हम सब जागें और निष्काम कर्म में जुट कर भारत वर्ष को विश्वगुरु बनाएं।



भारतीय शिक्षा के मूलतत्त्व

– गोविन्द प्रसाद शर्मा

शिक्षा व्यक्ति और समाज का बुनियादी आधार है। अपने औपचारिक और अनौपचारिक रूप में शिक्षा विकास की एक सतत् प्रक्रिया है, जो व्यक्ति, समाज और संस्थाओं को स्वरूप प्रदान करती है। अनौपचारिक शिक्षा का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता, वह संस्थानिक ढाँचे से मुक्त होती है, पर औपचारिक शिक्षा का अपना एक संस्थानिक स्वरूप होता है। अपने दोनों ही रूपों में शिक्षा समाज से प्रभावित होती है और समाज को प्रभावित भी करती है।

शिक्षा की शक्ति अद्भुत है, वह बदलाव का साधन है और सांस्कृतिक विरासत में संरक्षण की प्रेरणा भी है। यदि शिक्षा बदलाव का माध्यम नहीं बनेगी तथा समाज में विकास की विवेचनात्मक सोच और दृष्टि विकसित नहीं करेगी तो वह अपनी सामाजिक उपयोगिता खो देगी। साथ ही यदि शिक्षा, ज्ञान, सांस्कृतिक विरासत और धरोहरों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक नहीं पहुँचाएगी तो समाज अपनी जड़ों से कट जाएगा तथा उसकी इतिहास की समझ और सभ्यता का बोध समाप्त हो जाएगा।

जब शिक्षा सांस्कृतिक परम्पराओं और धराहरों को एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाती है तब वह देश की संस्कृति, जीवन और समाज से जुड़ती है। यदि वह इस कार्य को करने में असफल रहती है तब देश में सांस्कृतिक रिक्तता और वैचारिक भ्रम पैदा होता है। इस तथ्य को डेलर्स रिपोर्ट (1996) में स्वीकार किया गया है, रिपोर्ट में कहा गया है कि, “किसी देश की शिक्षा की जड़ें (उस देश की) संस्कृति में तथा उसकी प्रतिबद्धता प्रगति के लिए होनी चाहिए।” (ROOTED TO CULTURE AND COMMITTED TO PROGRESS) डेलर्स रिपोर्ट ने विश्व के देशों में तीन प्रकार के संकटों की चर्चा की है : आर्थिक संकट, प्रगति की अवधारणा सम्बन्धी संकट और नैतिक संकट। दुनियाँ के देशों के संदर्भ में इन संकटों की गम्भीरता बहुत अधिक है। प्रत्येक समाज इन संकटों का धरातलीय और व्यवहार परक समाधान अपने देश की शिक्षा की भूमिका में तलाशता है।

प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान में शिक्षा की जड़ें देश की संस्कृति में हैं ? क्या शिक्षा देश की संस्कृति, सभ्यता और मूल्यों का संरक्षण करती हैं? वह अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच किन रिश्तों को स्थापित करती है? शिक्षा आर्थिक विकास की किस अवधारणा को विकसित करती है? शिक्षा व्यक्ति में किस दृष्टि (Vision)

और ज्ञान को विकसित करती है? वैश्विक संदर्भ में उसकी भूमिका का स्वरूप क्या है? शान्ति, सद्भावना और न्यायपूर्ण समाज रचना में शिक्षा की क्या भूमिका है? इन प्रश्नों का स्वचिन्तन से उद्भूत कोई उत्तर कई देशों की शिक्षा प्रणाली के पास नहीं है, क्योंकि उपनिवेशवादी देशों ने विजित देशों में जो शिक्षा प्रणाली लागू की उससे देशज शिक्षा की विशिष्टाओं और मूलतत्त्वों को योजनाबद्ध तरीके से अलग किया गया। इस स्थिति को कई विचारकों और राजनेताओं ने समझा। परिणामतः विभिन्न देशों में विजेता देशों द्वारा लागू की गई शिक्षा प्रणाली का विरोध प्रारंभ हुआ। उदाहरण के लिए लैटिन अमेरिका में इसका विरोध पॉल फेरे जैसे शिक्षा शास्त्री ने किया। भारत में उपनिवेशवादी शिक्षा का विरोध स्वतंत्रता संग्राम का प्रमुख हिस्सा (कार्यक्रम) रहा। दयानंद सरस्वती, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, अरविन्द घोष सहित कई राजनेताओं, बुद्धिजीवियों और समाज सुधारकों ने अंग्रेजों द्वारा थोपी गई शिक्षा प्रणाली का विरोध किया।

भारत में भी शिक्षा कई अन्तर्विरोधों से ग्रस्त है। शिक्षा युवाओं में अपनी संस्कृति और परम्परा के प्रति अलगाव पैदा कर रही है, उससे ‘स्व’ की कोई अनुभूति नहीं हो रही है। हम शिक्षा में भारतीयता की तलाश कर रहे हैं, पर वह मिल नहीं रही। वह भारतीय समाज की मूल प्रकृति और चिति से अनुप्राणित नहीं है। आज भी शिक्षा पश्चिम की विचार परम्परा, दर्शन और प्रतिमानों से प्रभावित है।

पश्चिम की विचार परम्परा का प्रारंभ ग्रीक दार्शनिक चिन्तन से माना जाता है। ग्रीक चिन्तन में सुकरात, प्लेटो और अरस्तु की त्रयी का महत्वपूर्ण स्थान है पश्चिम के शैक्षिक और बौद्धिक चिन्तन पर उनके विचारों की छाया देखी जा सकती है। सुकरात ने व्यक्ति के स्वतंत्र चिन्तन पर जोर दिया। वह परम्परागत मान्यताओं तथा पूर्वाग्रहयुक्त विचारों का समर्थक नहीं था, पर विचारक मानते हैं कि सुकरात ने व्यक्ति और समाज के बीच आदर्श सम्बन्धों की स्पष्ट परिभाषा नहीं दी। प्लेटों ने आदर्श राज्य की स्थापना की पहल की, पर उसका आदर्श राज्य सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व के विकास का आधार नहीं बन सका। प्लेटो ने ज्ञान का उपयोग न्याय की प्राप्ति के लिए किया, पर प्लेटो का ज्ञान शासक वर्ग तक सीमित रहा। उत्पादक वर्ग उससे अछूता रहा। प्लेटो मनुष्यों की असमानता में विश्वास करता था। अरस्तु ने भी समाज को दो वर्गों में देखा। उसके मत में कुछ ही व्यक्ति होते हैं जो समाज और राज्य के कार्यों में सहभागी होते हैं। वे ही बुद्धिमान होते हैं। वे ही नेतृत्व कर सकते हैं और शासन कर सकते हैं, शेष नहीं। उसने दासता का समर्थन किया।

सामाजिक और व्यक्तिगत भेदभाव पर आधारित प्राचीन ग्रीक मान्यता दासत्व के

समर्थन की है, मनुष्यों में समानता की नहीं। ईसाइयत भी मानती है कि सब कुछ प्रकृति, पशु, पक्षी-मनुष्य के लिए हैं एवं मनुष्य में भी भेद हैं। कुछ ही हैं जिन्हें मनुष्य माना जा सकता है शेष को नहीं। उनका उपयोग किया जा सकता है। यही कारण है कि यूरोपीय शक्तियाँ जब अन्य देशों में गईं तो वहाँ के निवासियों को उन्होंने अपने से हीन और तुच्छ समझा।

यूरोप का ही दूसरा विचार जिसे मार्क्सवाद कहा जाता है, समाज में उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के लिए संघर्ष का चिन्तन है। उसके लिए शिक्षा एक स्वतंत्र प्रक्रिया नहीं है अपितु वह समाज में उत्पादक तथा उत्पादन पर नियंत्रण एवं उत्पादन सम्बन्धों का निर्धारण करने वाली संस्थाओं के बीच पारस्परिक सम्बन्धों के सांस्थानिक स्वरूप से प्रभावित है। मार्क्स मानता है कि आदर्श समाज सभी प्रकार के शोषण और व्यक्तिगत स्वामित्व से मुक्त होना चाहिए। उसने माना कि उसके लिए वर्ग संघर्ष और सर्वहारा वर्ग की तानाशाही आवश्यक है।

शिक्षा के उन प्रतिरूपों को जो यूरोपीय नहीं है, आज महत्व नहीं दिया जाता। उदाहरण के लिए प्रो. श्यामाचरण दुबे ने मनुष्य-प्रकृति-ज्ञान के पारस्परिक सम्बन्धों के सम्बन्ध में जब कुछ प्रमुख प्रतिरूपों पर विचार किया, जिन्होंने पश्चिम सहित विश्व के शिक्षा सिद्धान्तों और व्यवहारों को प्रभावित किया है, तब वे केवल पाश्चात्य प्रतिरूपों पर ही विचार करते हैं, भारतीय प्रतिरूप पर नहीं। उदाहरण के लिए प्लेटो का आदर्शवादी प्रतिरूप, सर्वज्ञानार्जनवादी (एनसाइक्लोपीडियस्ट) प्रतिरूप, मार्क्सवादी प्रतिरूप तथा परिणामवादी प्रतिरूप। यह आश्चर्यजनक है कि इन प्रतिरूपों में भारतीय प्रतिरूप या आदर्श (मॉडल) को सम्मिलित नहीं किया गया। इसका कारण बतलाते हुए प्रो. दुबे कहते हैं कि, “इसमें सन्देह नहीं कि उनके (इस पेपर के संदर्भ में भारतीय) कुछ मूल्य, शिक्षा की विषय वस्तुओं में सम्मिलित कर लिए गए हैं, किन्तु उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी लक्ष्यों और सिद्धान्तों के सार्वभौम ढाँचे को कोई निश्चयात्मक रूप नहीं दिया है।” इसका कारण बतलाते हुए प्रो. दुबे कहते हैं कि, “उनकी (हिन्दुओं की) परम्पराओं का जटिल ताना-बाना, मूल विषयों पर भी विविध प्रकार का बल और मूलतत्त्व के विवेचन की विविधता ऐसी बातें हैं, जो इस कार्य की जटिलताओं में वृद्धि करती हैं,” पर वे यह भी मानते हैं कि (पश्चिम) के (आदर्शों) प्रतिरूपों ने जीवन के बदलते संदर्भ और समस्याओं तथा शक्तियों से निपटने का कोई मार्ग नहीं सुझाया है। उन्हीं के शब्दों में—“ये प्रतिरूप समाधान प्रस्तुत कर भी नहीं सकते क्योंकि पश्चिम के चिन्तन में जागतिक एकता का भाव है ही नहीं, उसमें वर्चस्व का भाव है।” जिस शिक्षा ने उपनिवेशों में आधिपत्य स्थापित करने के लिए

कार्य किया हो, वह मनुष्यों की एकता का संदेश कैसे दे सकती है? जिस देश का सांस्कृतिक और दार्शनिक चिन्तन मानव मात्र की समानता का आदर्श उपस्थिति नहीं करता, वह उनकी समस्याओं का समाधान कैसे कर सकता है।

भारतीय शिक्षा, भारतीय दार्शनिक चिन्तन से अनुप्राणित है, जो मूलतः आध्यात्मिक है। भारतीय दार्शनिक चिन्तन परमसत्ता से स्व के समीप खण्ड रूप का तादात्म्य है, साक्षात्कार का रूप है। यह साक्षात्कार औपाधिक भेदों का अखण्ड और पूर्ण सत्ता में एकात्म्य अथवा स्व की पूर्ण स्थिति में परिणत है। इसे ही मुक्ति कहते हैं।

अतः भारतीय दार्शनिक चिन्तन की मान्यता है कि व्यक्ति का स्थूल और भौतिक रूप नश्वर और जड़ है। उसका वास्तविक रूप चित् आत्मा स्वरूप है। आत्मतत्त्व अखण्ड तथा दिग्काल से अविच्छिन्न और व्यापक है। इसलिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एकात्मता का भाव है, सब अभेद और एकरस है। इस रूप में यह चिन्तन, जगत की एकता का चिन्तन है, यह भेदकारी नहीं अपितु अभेद और अखण्डतावादी है। अतः भारतीय शिक्षा का मूल स्वरूप भी एकात्मतावादी है। यह शिक्षा व्यक्ति-व्यक्ति में, व्यक्ति-प्रकृति में, व्यक्ति-समष्टि में तथा व्यक्ति-परमेश्वर में भेद नहीं करती। पारम्परिक निर्भरता और पूरकता इसका गुण है। प्राचीन समय में इस तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के केन्द्र गुरुकुल थे, जहाँ गुरु के साथ शिष्य रहकर शिक्षा अध्ययन करते थे। शिष्य के लिए गुरु सर्वोपरि था। गुरु का जीवन, आदर्श जीवन था। गुरुकुल में अध्ययन करते थे। शिष्य के लिए गुरु सर्वोपरि था। गुरु का जीवन, आदर्श जीवन था। गुरुकुल में अध्ययनरत शिष्यों के बीच कोई भेदभाव नहीं था। सभी के साथ समानता का व्यवहार था। शिक्षा का धन से कोई सम्बन्ध नहीं था। शिक्षा खरीदी नहीं जाती थी। शिष्य में समर्पण, त्याग और सेवाभाव रहता था। गुरु का व्यवहार निस्पृह और ममत्व से पूर्ण हुआ करता था। श्रवण, मनन निदिध्यासन शिक्षा प्राप्ति की प्रक्रियाएँ थीं। कथापद्धति, प्रश्नोत्तर पद्धति शिक्षा की प्राचीन पद्धतियाँ हैं।

ब्रह्मचर्य और नित्यकर्म का पालन इसके अनुशासन थे। राज्य अथवा राजा के हस्तक्षेप से मुक्त गुरुकुल, गुरु की इच्छा के अनुसार चलते थे। प्राचीनकाल में तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालय भी थे जहाँ अध्ययनरत शिष्यों की संख्या हजारों में थी। विश्वविद्यालय आकार में गुरुकुलों से विशाल थे। विश्व के अन्य देशों के छात्र भी वहाँ अध्ययन के लिए आते थे। वहाँ के आचार्यों का सम्मान विश्वव्यापी था। इस व्यवस्था में भी शिक्षा का धन से कोई सम्बन्ध नहीं था। अनुशासन और ज्ञान के प्रति समर्पण ही वहाँ शुल्क का रूप था। राज्य का हस्तक्षेप भी नहीं था। राजा इस

बात से गौरवान्वित होता था कि उसके राज्य में विश्वविद्यालय हैं। श्रेष्ठ गुरु और आचार्य हैं। भारतीय शिक्षा सदैव राज्य के दबाव और हस्तक्षेप से मुक्त रही।

भारतीय शिक्षा मूल्यपरक है। मूल्य शिक्षा का केन्द्रीय मर्म है। मूल्य व्यक्ति और उसके सामाजिक जीवन से उद्भूत विचार और व्यवहार के मापक आधार हैं, जिनका निर्धारण समाज की सांस्कृतिक मान्यताओं और दार्शनिक विचारों से होता है। मूल्य ऐसा आधार प्रस्तुत करते हैं, जिनके द्वारा हम उचित, अनुचित का बोध करते हैं। कालान्तर में ये मूल्य समाज और व्यक्ति के स्वरूप को निर्मित करते हैं तथा उसकी पहचान बनाते हैं। संस्कृति स्वयं एक मूल्याधारित धारणा है, जिसमें मनुष्य और समाज से जुड़े कर्म और ज्ञान के श्रेष्ठतम मूल्यों पर जोर दिया जाता है और उनका सम्बर्धन करने की भूमि तैयार की जाती है।

आज शिक्षा में सबसे बड़ा संकट मूल्यों का है। पिछले पांच-छह दशकों में प्रौद्योगिकी संचार और तकनीकी प्रगति के साथ ही साथ उदारीकरण और भूमण्डलीयकरण का युग प्रारंभ हुआ है। जिसके कारण विश्व में एक नया वर्ग तथा उसकी नई सोच और जीवन शैली विकसित हुई है। यह जीवन शैली इस वर्ग को अपने देश की सभ्यता, संस्कृति, भाषा, परम्परा, आचार-विचार पंचाग और इतिहास से काट रही है। यह भी डर है कि कहीं आगे चलकर यह वर्ग अपनी पहचान ही न खो दे। ऑल्विन टाफ्लर ने अपनी पुस्तक 'फ्युचर शॉक' में इस संभावना की चर्चा विस्तार से की है। इसी प्रकार थियोडोर रोजेक ने अपनी पुस्तक 'द मेकिंग ऑफ ए काउन्टर कल्चर' में कहा है कि, 'बेवसाइट, जेट और अश्लील फिल्मों के व्यापक प्रसार ने मानव समाज की चूलें हिला दी हैं। यंत्रशाही ने अपनी उत्पादन क्षमता और उपभोक्ता की रुचि को नियंत्रण करने सम्बन्धी अपनी चालाकी पूर्ण नीतियों के द्वारा एक ऐसी संस्कृति को जन्म दे डाला है, जिसका सम्बन्ध मात्र दैहिक समागम हो गया है।'

वर्तमान में शिक्षा संस्थाओं में जो परिवेश विकसित हो रहा है उसमें सभी नैतिक वर्जनाएँ और व्यवहार ध्वस्त हो रहे हैं, जो सर्वेक्षण किए जा रहे हैं और उनके जो परिणाम आ रहे हैं, वे भारतीय संदर्भ में ही नहीं वैश्विक संदर्भ में भी भयावह हैं। वह हिंसक, आक्रामक और अनैतिक वातावरण को विकसित कर रहे हैं। कुछ समय पूर्व अमेरिका में एक सर्वे प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक था (Why Jones does not make difference between Right and Wrong) "जानी गलत और सही में अन्तर क्यों नहीं कर पाता।" इस सर्वे के जो परिणाम प्रकाशित हुए उसमें कहा गया कि शिक्षण संस्थाओं में जो परिवेश विकसित हो रहा है, वह किसी भी रूप में स्वस्थ नहीं है। छात्र अपने साथ हथियार लेकर आते हैं। आज स्थिति यह है कि छात्रों में पब

संस्कृति विकसित हो रही और किही पार्टियों का फैलाव हो रहा है। सही शिक्षा के अभाव में समाज के हिंसक होने और आधारभूत सामाजिक संस्थाओं जैसे परिवार, विवाह आदि के टूटने का डर बढ़ रहा है। नैतिक मूल्यों में गिरावट आ रही है। ऐसे समय में विश्व का भारत की ओर देखना स्वाभाविक है। भारत के पास जीवन के प्रति देखने की एक नैतिक दृष्टि है, जो उसकी शिक्षा और संस्कृति में परिलक्षित होती है।

भारतीय शिक्षा मूल्यपरक ही नहीं संस्कारयुक्त भी है। शिक्षा संस्कार और व्यक्ति के व्यक्तित्व की संकल्पना के साथ जुड़ी है। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली संस्कारों पर जोर नहीं देती, वे इसके प्रति तटस्थ हैं। उनकी शिक्षा में संस्कारों की वह अवधारणा नहीं है जो हमारे यहां है। संस्कार व्यक्ति के सांस्कृतिक उन्नयन के साथ जुड़े रहते हैं। प्रायः आम भारतीय संस्कारित व्यक्ति को निरक्षित व्यक्ति से अधिक श्रेष्ठ मानता है।

संस्कार की तात्त्विक और मनोवैज्ञानिक विवेचना न करते हुए सामान्य व्यवहार में यह कहा जा सकता है कि संस्कार व्यक्ति के स्वभाव, पसन्द न पसन्द तथा परिस्थिति जन्य अवसरों पर व्यक्ति की प्रतिक्रिया के तौर तरीकों और स्वरूप को सुनिश्चित करने वाले, संचित मानसिक घटक हैं, जो व्यक्ति की मानसिक बनावट और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इस रूप में संस्कार का अर्थ है, मानव के जीवन के उन्नयन के लिए निर्धारित मूल्यों के अनुसार जीवन को ढालने की विधि का क्रियान्वयन। शिक्षा व्यक्ति को संस्कारित करने की प्रक्रिया है। छात्र में नैतिक मूल्यों के प्रति सम्मान भाव, चारित्रिक, पवित्रता और आचरण की शुद्धता को विकसित करने के लिए व्यक्ति की मानसिक और व्यवहारिक तैयारी में संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके लिए संस्कारयुक्त आचार्यों के महत्व को भी स्वीकार किया गया है।

वर्तमान शिक्षा की आलोचना का बहुत बड़ा कारण यह है कि वह व्यक्तिगत होती जा रही है। शिक्षा अच्छे और कैरियर के लिए छात्र को योग्य बना रही है। प्रतियोगी भावना विकसित कर रही है, पर छात्र में सामाजिक दृष्टि, सामाजिक सोच और समाज के प्रति कर्तव्यों को विकसित नहीं कर पा रही है। यह शिक्षा का अधूरापन है। प्रतिबद्धता और समाजोन्मुखी जीवन भारतीय शिक्षा की पहचान है। जब हम समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को जानेंगे, तब हम अपनी सीमित सोच और जीवन के छोटे से दायरे से बाहर निकल सकेंगे। शिक्षा की ग्राह्यता व्यक्तिगत है, पर उसके कारण विकसित गुण, शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग समाजपरक है। यदि ऐसा नहीं होता है

और व्यक्ति शिक्षा द्वारा प्राप्त शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग स्वयं अपने लिए करता है, तब वह व्यक्ति स्वार्थी, स्वकेन्द्रित और समाज के लिए भार बन जाता है और यह बहुत बड़ी सीमा तक आज की त्रासदी भी है।

शिक्षा मुक्ति का मार्ग है। लोक कल्याण हेतु मानव मात्र के हित के लिए ज्ञान के विस्तार का विचार भारतीयों के संस्कार में है। ज्ञान ही, भय, दुःख, शोक, दारिद्र्य और अभाव से मुक्ति दिलाता है, इसलिए ज्ञान को मनुष्य की आध्यात्मिक प्रकृति माना है। ज्ञान मनुष्य के अन्दर ही है। भारतीय आत्मा को ब्रह्म का अंश मानते हैं और ब्रह्म का स्वरूप चैतन्य है। अतः आत्मा का स्वरूप भी चेतना है, सब ज्ञान इसी में है। शिक्षा इस चेतना पर जो अज्ञान का आवरण छा गया है, उसे अलग करने का कार्य करती है। हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जो ज्ञान की ओर ले जाए, मुक्ति की ओर ले जाए। इसलिए कहा गया है, “सा विद्या या विमुक्तये” अर्थात् विद्या वह है जो मुक्ति दिलाए।

शिक्षा जब व्यक्ति से जुड़ती है, तो वह स्वाभाविक रूप से उसके व्यक्तित्व से भी जुड़ती है, भारतीय शिक्षा व्यक्तित्व को गढ़ती है। सामान्यतः व्यक्तित्व को व्यक्ति के स्वभाव, मनोदेहिक गुण धर्मों, विशेषताओं, न्यूनताओं आदि का समुच्चय माना जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विचार संदर्भ में व्यक्तित्व व्यक्ति की आन्तरिक और वाह्य शक्तियों का धनीभूत रूप है, पर व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भारतीय संकल्पना व्यापक है। भारतीय चिन्तन में व्यक्तित्व को जीवात्मा का रूप माना है। व्यक्ति का व्यक्तित्व पंचकोष का संश्लिष्ट रूप है, ये पांच कोष हैं—अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष और आनन्दमयकोष। कोष को आवरण या भण्डार भी कह सकते हैं। शिक्षा की भूमिका इन पांच आवरणों को, ज्ञान द्वारा समझते हुए क्रमशः हटाने की तथा अन्ततः आनन्दमयकोष को उद्घाटित करने की है। आनन्दमयकोष ही सत्चित्त आनन्द की अनुभूति है, यही विराट का साक्षात्कार है और इसकी अनुभूति ही व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूर्णता है।

यदि हम शिक्षा का अपना प्रतिमान विकसित करना चाहते हैं तो हमें ऐंग्लो-अमेरिकन प्रभाव और वामपंथी सोच की छाया से बाहर निकलना पड़ेगा। आज शिक्षा पर ऐंग्लो-अमेरिकन और वामपंथी तथा न्यायपूर्ण समाज रचना के सम्बन्ध में मूल भारतीय अवधारणाओं और संकल्पनाओं को विकृत कर प्रस्तुत किया जा रहा है। अतः हमारी पहली प्राथमिकता भारतीय स्थापनाओं, कसौटियों और मानकों (पैरामीटर्स) को पुनः शिक्षा के केन्द्र में लाना है।

इसके लिए प्रचलित अध्यापन पद्धति को ध्वस्त करके दूरी कोई पद्धति विकसित करने की आवश्यकता नहीं है अथवा पुनः गुरुकुल प्रणाली पर लौटने

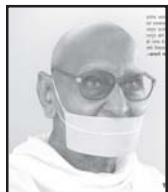
की भी आवश्यकता नहीं है, पर गुरुकुल भावना को समझने और उसे शिक्षा के साथ जोड़ने की आवश्यकता तो है। इसके लिए आवश्यकता है वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्रतिबद्धता को विकसित करने की जो स्वाभिमान और आत्मविश्वास को जागृत कर सके तथा अपनी संस्कृति, सभ्यता, मिट्टी और मूल्यों के प्रति जुड़ाव पैदा कर सके।

अभी तक जो विचार किया गया वह मुख्यतः भारतीय शिक्षा के मूल तत्त्वों की प्रासांगिकता और उपादेयता की महत्ता को प्रदर्शित करता है। आज विश्व बहुत बदल गया है, ज्ञान के क्षेत्र में भी बहुत विकास हो चुका है, हम अपनी वैशिष्टताओं के गुणगानों के सहारे ही नहीं रह सकते। समय का भी एक दबाव होता है, एक प्रवाह होता है। अतः हमें उसकी तीव्रता को समझना पड़ेगा। मैं केवल एक विचारणीय प्रश्न की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा। भारत ने ज्ञान को व्यापार से जोड़ने में कभी विश्वास नहीं किया। परिणामतः हम इस ओर उदासीन भी रहे। प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु ने मार्कोनी (इटली) से पहले वायरलेस का आविष्कार किया, पर उन्होंने उसे अपने नाम से पेटेन्ट नहीं कराया। पर आज यदि इन्हीं विचारों में हम जिँएँगे तो घाटे में रहेंगे। आज का युग ज्ञान का युग है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक रघुनाथ माशेलकर के अनुसार, “ज्ञान नामक नए ताप-नाभिकीय हथियारों से, ज्ञान बाजार में, भविष्य का युद्ध लड़ा जाएगा।” स्पष्ट है ज्ञान ही पूँजी है और ज्ञान ही शक्ति है। हमें इस ओर तीव्रता से सोचना होगा। हमारे देशी ज्ञान को विश्व के कई लोग चतुराई से और हमें अँधेरे में रखकर पेटेन्ट करा रहे हैं। हम हल्दी के पेटेन्ट की लड़ाई जीत चुके हैं, अब हाल ही में अमेरिका के एक नागरिक अल्बर्ट क्ले ने अमेरिका में वैदिक गणित की एक गणितीय गणना के लिए अमेरिकी पेटेन्ट की माँग की है। यदि यह पेटेन्ट होता है, तो इसका दूरगामी परिणाम अगले कुछ वर्षों में हम पर पड़ेगा, जो आर्थिक और ज्ञानात्मक दोनों प्रकार का होगा।

अतः अपनी बौद्धिक सम्पदा की रक्षा के लिए पेटेन्ट सम्बन्धी जानकारी और सजगता की आवश्यकता है। हमें इस पक्ष को भी महत्त्व देना होगा। आज भारतीय शिक्षा को अपनी अन्तर्निहित विशेषताओं के रक्षण और विकास के लिए वर्तमान की समसामयिक शैक्षिक धाराओं के साथ संवाद और उसके प्रभावों को आत्मसात करते हुए अपनी पहचान को बनाए रखने की क्षमता विकसित करनी होगी।

□

लोभ है समस्या : संतोष है समाधान



— आचार्य महाप्रज्ञ

हर व्यक्ति आवश्यकता की पूर्ति करता है। यह अनिवार्यता है। रोटी, कपड़ा आदि जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक होती है। किन्तु अधिक इकट्ठा करने की बात आवश्यकता की बात नहीं है, उसके पीछे काम करता है लोभ।

मनुष्य में एक लोभ की वृत्ति है, जो समस्या को जन्म देती है। उसके दुष्परिणाम आते हैं। इस विषय पर बहुत सुंदर कहा गया है—एक ज़हरीला पेड़, जिस पर फल भी ज़हरीले लगते हैं। अर्थ है उस वृक्ष की जड़ यह मोहरूपी पेड़ आदमी की चेतना को मूढ़ बना देता है, विवेक शून्य बना देता है। चेतना को शून्य बनाने वाला, जो ज़हरीला वृक्ष है उसका बीज है लोभ।

क्रोध की आग को पैदा करने के लिए लोभ अरणी की लकड़ी के समान है। इस लकड़ी को घिसने से आग पैदा हो जायेगी। आज अग्नि पैदा करने के लिए दियासलाई है, और भी बहुत सारे साधन हैं। क्रोध की अग्नि को पैदा करने के लिए लोभ की भूमिका रहती है। क्रोध और लोभ का बहुत गहरा सम्बन्ध है। दो व्यक्तियों में बहुत निकट का सम्बन्ध है, मैत्री है, सौहार्द है पर जब एक व्यक्ति के मन में लोभ पैदा हो जाता है तो फिर वह ठगना शुरू करता है, धोखा देना शुरू करता है। उस समय सामने वाले को भयंकर क्रोध आ जाता है। जिस पर मैंने भरोसा किया, विश्वास किया उसने विश्वासघात किया है। अकेले ने धन बटोर लिया, मेरा हिस्सा भी ले लिया। यह क्रोध का बहुत बड़ा कारण बन जाता है।

दो भाई हैं, दो साझेदार हैं, बड़े अच्छे ढंग से रहते हैं। जब एक के मन में लोभ प्रबल होता है जब दूसरे के क्रोध को भभकने का मौका मिल जाता है। वह सारा का सारा हज़म करना चाहता है। दूसरा ऐसा करने नहीं देता, तब समस्या पैदा होती है। अभी हम रतलाम में थे। एक भाई आया और उसने कहा—“मैंने फैक्ट्री चालू की थी, फिर साझीदार बनाया, धन सारा मैंने लगाया आज वह अधिकारी बन गया, धन हड़प रहा है, मुझे अलग कर रहा है, मुझे फैक्ट्री जाने ही नहीं देता।” जिस व्यक्ति ने सहयोग दिया, काम किया, उसी व्यक्ति पर लोभ के कारण क्रोध हावी होने लग गया।

लोभ कलह का क्रीड़ास्थल है। सब लोग अनुभव करते हैं कि परिवारों में कलह होता है, उसका सबसे बड़ा कारण लोभ है। लोभ के कारण घर में कलह शुरू

हो जाता है। बहुत कम लोग हैं जो लोभ पर नियंत्रण रखते हैं। जो लोग लोभ पर नियंत्रण कर लेते हैं, शायद उनके घर में कलह कम होता है। जब एक व्यक्ति अधिक सम्पत्ति को बटोरना चाहता है तब कलह होना स्वाभाविक हो जाता है। एक भाई आया, आकर बोला—‘मेरे भाइयों ने मेरे साथ धोखा कर दिया। हम साझे में थे, व्यापार कर रहे थे। दो भाइयों ने व्यापार पर अपना अधिकार जमा लिया। अब वे कहते हैं—तुम्हारे हिस्से में कुछ भी नहीं रहता।’ जहां लोभ की अति हो जाती है। वहां कलह भी शुरू हो जाता है, यह कलह के लिए एक क्रीड़ागृह है।

लोभ विवेकरूपी चंद्रमा के लिए राहु ग्रास का काम करता है, यह विवेक को ग्रसित करता है। बहुत अच्छी बात कही है आचार्य ने, अच्छा जीवन विवेक के द्वारा चलता है। विवेक का मतलब होता है हित और अहित का विवेचन, यह काम करने में मेरा हित है और यह काम करने में मेरा हित नहीं है, इस प्रकार की जो चेतना है, वह विवेक है। जब लोभ बढ़ता है तब विवेक नहीं रहता, विवेक पर भी ग्रहण लग जाता है। उसे हित-अहित का पता नहीं रहता।

विवेक की अवस्था में झगड़ा नहीं हो सकता। इसे विज्ञान की भाषा में समझें। नियोकोर्टेक्स मस्तिष्क का एक भाग है वहां विवेक होता है। वह जब काम करता है तो आदमी लड़ाई-झगड़ा नहीं करता, वह हर समस्या को शांति से सुलझाने का प्रयत्न करता है। जब चिंतन मस्तिष्क की विकसित परत तक नहीं पहुँचता और जो इमोशन की परत है संवेग की भावात्मक परत है वहां चला जाता है तब आदमी लड़ने-झगड़ने लग जाता है।

घटना एक समान है किन्तु परिणतियां भिन्न हैं, दो प्रकार की हैं। जिसमें विवेक होता है वह लड़ाई-झगड़ा नहीं करता, उसको निपटा देता है। जिसमें विवेक नहीं होता, लड़ाई-झगड़ा शुरू हो जाता है। एक बहुत बड़ा सेठ था। उसकी मृत्यु हो गयी। आखिर भाइयों ने सब चीजों का बंटवारा कर लिया। एक हीरे की अंगूठी शेष रही। सब चीजों का आधा-आधा हिस्सा कर लिया, अब उसका क्या करें। हीरे की अंगूठी को तोड़ा नहीं। किसी एक को दे दिया।

एक यति के दो शिष्यों ने हस्तलिखित प्रतियों का बंटवारा किया। एक प्रति बच गयी। उस समय विवेक काम नहीं कर रहा था। उसने कहा—मैं लूंगा, दूसरे ने कहा—मैं लूंगा अब कौन ले? प्रति को आधा-आधा कर दिया। आधी प्रति एक ने ले ली, आधी दूसरे ने। वह प्रति आज भी विवेक-चेतना के अभाव की कहानी कह रही है। अगर विवेक होता तो कम-से-कम प्रति तो सुरक्षित रह जाती, पर उसके अभाव में प्रति भी सुरक्षित नहीं रही।

एक महिला कहती है यह लड़का मेरा है। दूसरी कहती है मेरा है। अब इसका

निपटारा कैसे हो? न्याय के लिए दोनों राजदरबार पहुंचीं। बात सुनकर राजा असमंजस में पड़ गया। उसने मंत्री को कहा 'मंत्री-इस समस्या को सुलझाओ।'

मंत्री बड़ा बुद्धिमान था, मनोवैज्ञानिक ढंग से उसने समस्या को सुलझाने का फैसला किया। मंत्री ने दोनों महिलाओं को बुलाया, और कहा 'देखो, तुम दोनों कहती हो लड़का मेरा है। अब क्या करें, कोई उपाय नहीं है, लड़के को आधा-आधा टुकड़ा कर दें। आधा हिस्सा तुम रख लो आधा वह। तब एक महिला बोली-नहीं ऐसा मत करो, इसी को दे दो, लड़के को नहीं मारना है।' मंत्री ने कहा। 'असली मां तो यह है, वह मां नकली है, जिसके मन में संवेदना नहीं है और कह रही है लड़के के दो टुकड़े कर दो।' जब विवेक-चेतना होती है तब तो काम ठीक होता है, नहीं तो लड़के के भी टुकड़े, पुस्तके के भी दो टुकड़े हो सकते हैं।

विवेक बहुत बड़ी सम्पत्ति है। विवेक से बहुत अच्छा काम होता है, जब आदमी का विवेक खो जाता है, हित और अहित का ज्ञान नष्ट है, तो फिर सारी समस्याएं पैदा हो जाती हैं। लोभ की चेतना विवेक को भी नष्ट कर देती है। जब लोभ प्रबल बनता है, उस समय विवेक नहीं रहता। भला पुत्र पिता के सामने आक्रोश कर सकता है? जब वह विवेक को खो देता है तब पिता को भी गालियां देता है और उसे घर से भी निकाल देता है।

हमारी सफलता का बहुत बड़ा सूत्र है मानवीय चेतना का विवेक। जिसमें विवेक करने की शक्ति रहती है यदि उस पर लोभ हावी होता है तो वह ठंडा हो जाता है। बहुत बड़ी समस्या है लोभ की। इतनी उग्र वृत्ति बनती है कि कोई विवेक नहीं रहता। इतिहास की अनेक घटनाओं से साहित्य भरा हुआ है, जब-जब लोभ प्रबल बना, आदमी की विवेक चेतना सो गयी और उस अवस्था में जो अकरणीय था मनुष्य ने किया। राजवंशों का इतिहास देखिये, मन में लोभ आया कि मुझे राजा बनना है तो पिता के साथ दुर्व्यवहार किया। लोभ केवल धन का ही नहीं होता, पूरे पदार्थ जगत पर इसका अधिकार है। सत्ता का भी लोभ है, प्रभुत्व का भी लोभ है, धन का भी लोभ है, पदार्थ का भी लोभ है, अपने बड़प्पन का भी लोभ है, अधि कार जमाने का भी लोभ है।

लोभ की अनेक शाखाएं हैं, यह एक ऐसा वृक्ष है, जिसकी शत शाखाएं नहीं, हजार शाखाएं हैं, और लक्ष शाखाएं हैं, जिसका कोई पार नहीं है। सत्ता का भी बड़ा लोभ होता है। जो आदमी सत्ता पर जाना चाहते हैं, वे अपनी अहिंसा अर्हता पर विचार नहीं करते। उनका एक ही चिंतन होता है कि हमें अधिकार और सत्ता पर अपना अधिकार करना है, फिर सारी बातें गौण हो जाती हैं, सबसे ज्यादा सुरक्षा करें विवेक की। कैसी भी स्थिति आये, कम-से-कम विवेक-चेतना हमारे साथ रहे।

महामात्य चाणक्य ने कहा था-'सारा संसार शत्रु बन जाये, पर मेरी बुद्धि जब तक निर्मल है मुझे चिंता नहीं है।' वे भी यह चिंतन करें कि जब तक हमारी विवेक चेतना जागृत है हमें कोई समस्या नहीं है, कोई कठिनाई नहीं है। सबसे अधिक प्रयत्न करें कि हमारी विवेक की चेतना सदा सुरक्षित रहे, हममें हित और अहित के ज्ञान की क्षमता रहे कि यह तो हमारे हित का काम है, यह हमारे अहित का काम है तब कोई खतरा नहीं होगा।

लोभ जब प्रबल होता है तब वह विवेक-चेतना को भी आच्छादित कर देता है। आदमी धन की सुरक्षा करता है और बढ़िया चीजों की सुरक्षा करता है, धन को लॉकर में रख देता है, घर में भी ऐसा स्थान बनाता है कि किसी को पता न लगे। कितना अच्छा हो कि विवेक के लिए कोई सुरक्षित स्थान बना लें कि मेरा विवेक कहीं न जाये, मेरा विवेक जागृत रहे, तो शायद आदमी अधिक सुखी रह सकता है।

आदमी सच्चाई को पकड़ता है। जब सच्चाई पकड़ में आती है तब वह ज्यादा अनर्थ नहीं करता। लोभ को भी शांत करता है, लोभ के वशीभूत होकर दूसरों के साथ अन्याय भी नहीं करता, क्रूर व्यवहार नहीं करता, अनैतिक व्यवहार भी नहीं करता। आज सारे बाजार में अनैतिकता का व्यवहार चल रहा है। कार्यालयों में, ऑफिसों में और सचिवालयों में बड़े-बड़े घोटाले लोभ के कारण चलते हैं। लोभ आदमी की विवेक चेतना को सुला देता है और जब वह सो जाती है तब फिर खुलकर बुराई करने का मौका मिलता है। इसलिए ठीक कहा है-यह कलह का क्रीड़ागृह और बुराईयों का क्रीड़ागृह है। इसलिए लोभ की वृत्ति पर अंकुश लगाने का प्रयत्न करें।

क्रोध, अहंकार, माया और लोभ-ये चार समस्याएं आंतरिक जगत को विनष्ट करने वाली हैं, इन चारों में लगता है कि लोभ सबसे बड़ी समस्या है। यह ऐसा गड्ढा है, जिसे कभी भरा नहीं जा सकता, इसलिए जो समस्याओं को सुलझाना चाहें, समस्या की जटिलता को कम करना चाहें, उस समझदार व्यक्ति की अथवा धार्मिक व्यक्ति को इस विषय पर चिंतन करना चाहिए कि मेरा लोभ बढ़े नहीं, जितना लोभ है उसकी मीमांसा करें। केवल मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकूँ उतना ही लोभ है या उससे ज्यादा है। अगर उतना ही है तो आदमी छोड़ नहीं सकता, किन्तु ज्यादा लोभ है तो कैसे काम कर सकूँ, इस पर चिंतन करें।

सैकड़ों समस्याओं, अपराधों, बुराईयों को जन्म देने वाली एक मनोवृत्ति है लोभ की। उस वृत्ति पर अगर नियंत्रण किया जा सके तो शायद अनेक समस्याओं से, दुःखों से पार पा सकते हैं। संतोष का जीवन बड़े आनंद का जीवन है, जहां भय नहीं है, क्लेश नहीं है। लड़ाई-झगड़ा नहीं है। आनंदमय जीवन जीने का सूत्र है-लोभ।

संतोष और लोभ इन दोनों पर विचार कर लोभ पर अंकुश लगायें तो आदमी बहुत अच्छा जीवन जी सकती है और हिंसा से बचा जा सकता है।

अहिंसा पर विचार करते समय हमें लोभ पर अवश्य विचार करना चाहिए, क्योंकि हिंसा और लोभ को अलग नहीं किया जा सकता। अहिंसा पर जाने का मार्ग है संतोष, हिंसा को बढ़ाने का या हिंसा की ओर जाने का मार्ग है लोभ। इसलिए अहिंसा पर विमर्श करते समय हम लोभ पर नियंत्रण करने की बात सोचें, उपाय की खोज करें, जिसमें आदमी को लोभ संतुलित हो सके और वह आदमी को कष्ट देने वाला न बने।

जिस समय यह पत्रिका प्रेस में थी तभी ९ मई, २०१० को जैन धर्म के तेरापंथ के दशम आचार्य महामुनि महाप्रज्ञ जी का ९१ वर्ष की आयु में निधन हो गया।

‘ज्ञान प्रभा’ परिवार की ओर से उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि।

चिंतामुक्ति की आध्यात्मिक औषधि

फ्रांस के प्रसिद्ध साहित्यकार मारिआक से किसी ने पूछा-

“चिंता से कैसे मुक्त हुआ जा सकता है?”

“चिंता की एक अच्छी दवा मेरे पास है।”

“कौन-सी ?”

“वह है चिंता द्वारा चिंता का उपचार,” मारिआक ने उत्तर दिया, पर उसने देखा प्रश्न पूछने वाला उसके उत्तर से संतुष्ट नहीं है, तो उसने कहा-“भाई, आप अपनी चिंता छोड़कर दूसरों की चिंता करने लग जाइये, चिंता तभी पराजित और वशीभूत होगी जब हम उसे करुणा में परिवर्तित कर दें, करुणा का चोला पहन लेने पर परार्थ-परमार्थ पर ध्यान देने से चिंता हमें अपने भविष्य की चिंता से मुक्त कर देती है, चिंता मुक्त होने की यही आध्यात्मिक औषधि है।”

‘मानापमान का स्वरूप तथा उपचार’

- सीता राम गुप्ता

मशहूर-ओ-मारूफ उर्दू शायर मिर्जा गालिब का एक शेर है:

निकलना खुल्द से आदम का सुनते आए थे लेकिन,

बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले।

ये इज्जत-आबरू ये बेइज्जती अथवा मानापमान क्या है ? हमारे शरीर में इनका स्थान कहां पर है? वस्तुतः इसकी भौतिक सत्ता तो है ही नहीं। ये सब मन के स्तर पर घटित होता है और मन को इसको जैसा समझाओगे, बताओगे वैसा ही मान लेगा और करेगा। जैसा हमने मन में सोच रखा है वैसा हो जाए तो सुख अन्यथा दुख। दूसरों से जैसा आचरण हम चाहते हैं वैसा हो जाए तो इज्जत अन्यथा बेइज्जती। एक शेर और देखिए :

हजरते-आदम न निकले होंगे इस तौकीर से,

उसने खुद उठ कर उठाया अपनी महफिल से मुझे।

ये साहब तो गालिब को भी न सिर्फ चार कदम पीछे छोड़ देते हैं अपितु इनका तो अंदाज ही निराला है। इनके लिए तो महफिल से निकाला जाना और खुद महबूब द्वारा महफिल से निकाला जाना तौकीर अर्थात् प्रतिष्ठा की बात है जो इन्हें हजरत आदम के समकक्ष खड़ा कर देती है। अपना-अपना अंदाज है। मानापमान से बचना है तो इससे अच्छा उपाय और क्या हो सकता है? थोड़ा-सा दृष्टिकोण में परिवर्तन करने की जरूरत है और थोड़ा धैर्य से काम लेने की जरूरत है फिर किसमें ताकत है जो आपका अपमान कर दे अथवा आपको दुख पहुंचा दे ?

यह आपके सोचने से ढंग पर निर्भर करता है कि आप किसी घटना को किस रूप में लेते हैं। यदि वास्तव में कोई ऐसी छोटी-मोटी घटना घट जाती है जो आपके लिए अपमान है और मैं इसे कदापि बर्दाश्त नहीं कर सकता तो आप में धैर्य या सहिष्णुता नाम की कोई चीज है ही नहीं और इस स्थिति में आप सचमुच अपमान के अधिकारी हैं। आप में खुद का तमाशा बनते देखने की चाह पैदा हो रही है। आप इस स्थिति को स्वीकार कर स्वयं को अपमानित करने की स्वीकृति दूसरों को दे रहे हैं। वास्तव में आपकी सहमति के बिना कोई आपका अपमान नहीं कर सकता। किसी घटना पर आपकी जो तत्क्षण प्रतिक्रिया होती है वही आपके अपमान का कारण बनती है। हर स्थिति में तुरंत प्रतिक्रिया मत कीजिए। ऊंट किस करवट बैठता है

इसको देखने का इंतजार कीजिए। हो सकता है कुछ देर में परिस्थितियां ही बदल जाएं। आज ही कोई कयामत का दिन तो नहीं कि आज ही सारे फ़ैसले हो जाने चाहिए। कई बार कुछ गलतफहमियां भी हो जाती हैं अतः उचित अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिये जब बात साफ़ की जा सके। एक दूसरे का गिरेबान पकड़ लेने से तो कभी समस्या का समधान नहीं हो सकता। धैर्य और शालीनता तो हर हाल में बनाए रखनी चाहिये।

एक घटना याद आ रही है। एक संगोष्ठी में मैं भी अपने विचार रख रहा था। अचानक एक बंधु बोल उठे। आपको बिल्कुल तमीज नहीं है बोले जा रहे हैं। ये कोई सभ्यता है क्या दूसरे लोगों को नहीं बोलना है ? मैं ये सुनकर सन्न रह गया। संगोष्ठी में पचास-साठ लोग उपस्थित थे। सभी मित्र और परिचित। बोलने की कोई समय सीमा भी तय नहीं थी फिर भी मैंने उक्त मित्र महोदय के कथन का प्रतिवाद नहीं किया अपितु कहा, हां काफी समय हो गया है और मैं शीघ्र अपनी बात पूर्ण करता हूं। यह कहकर मैंने दूरदर्शन पर उर्दू खबरें पढ़ने वाले एक समाचार वाचक की तरह आंधी-तूफान की गति से बहुत जल्दी अपनी बात पूरी कर डाली और आराम से बैठ गया। थोड़ा मर्माहत जरूर हुआ पर किसी पर प्रकट नहीं होने दिया जैसे कोई बात ही न हुई हो। कुछ दिन बाद इस गोष्ठी के संयोजक मित्र का फोन आया और उन्होंने कहा कि उस दिन आपसे जिस धैर्य और शालीनता का परिचय दिया वह अनुकरणीय है। यह सुनकर मान-अपमान तो दूर मैं गद्गद् हो गया। पूरे शरीर में आनंद की लहरें हिलोरे मारने लगीं। यही आनंद की लहरें; जिन्हें तकनीकी भाषा में हार्मोन का उत्सर्जन कहते हैं; हमारे सुख, हमारी प्रसन्नता तथा हमारे अच्छे स्वास्थ्य का कारण हैं। धैर्यवान होकर हम अपने अच्छे स्वास्थ्य को ही आमंत्रित करते हैं। यदि हमारा स्वास्थ्य अच्छा होगा तो हममें धैर्य भी होना ही चाहिये। धैर्यवान होंगे तो पुनः स्वास्थ्य अच्छा होगा। दोनों पूरक हैं एक दूसरे के।

समझदार व्यक्ति को किसी भी घटना या आरोप पर प्रतिक्रिया करने से पूर्व उसका भली-भांति विश्लेषण कर लेना चाहिये। विश्लेषण से पता चल जाएगा कि ये आरोप अथवा तथ्य सही हैं या गलत। यदि आरोप सही हैं तो उसे स्वीकार कर सुधार करना चाहिये क्योंकि इसी में हमारा आंतरिक विकास अंतर्निहित है। यदि मिथ्या दोषारोपण किया गया है तो भी विचलित होने की क्या बात है ? सोचिये क्या इतनी छोटी सी बात मुझे विचलित कर देगी ? किसी बात को बहुत गंभीरता से न लेकर हल्के-फुल्के ढंग से या मजाक में भी लिया जा सकता है। एक घटना देखिए। एक व्यक्ति को पंचायत से धक्के देकर बाहर कर दिया गया। उसके एक तथाकथित मित्र ने चुटकी लेते हुए पूछा कि सुना है कल तुम्हें पंचायत से धक्के मार कर बाहर

निकाल दिया गया। उस व्यक्ति ने कहा हां निकाल तो दिया पर इससे क्या फर्क पड़ता है। मैं तो इससे भी बड़ी-बड़ी पंचायतों से कई बार धक्के दे देकर निकाला जा चुका हूं। है कोई प्रत्युत्तर?

तुलनात्मक अध्ययन द्वारा भी हम इस प्रकार की स्थिति को नियंत्रित कर सकते हैं। कोई भी स्थिति या घटना स्वयं में छोटी या बड़ी अथवा अच्छी या बुरी नहीं होती अपितु दूसरी स्थितियों या घटनाओं से तुलना करने पर ही उसका स्वरूप निर्धारित होता है। मानापमान भी एक सापेक्ष स्थिति है। जीवन में हम न जाने कितनी बड़ी-बड़ी समस्याओं से जूझते रहते हैं। कभी आर्थिक संकट तो कभी सामाजिक प्रतिष्ठा की मान-मर्यादा की समस्या। कभी भयंकर बीमारी अथवा दुर्घटना का हमला तो कभी अपने किसी प्रियजन के बिछोह की स्थिति। जीवन में घटित बड़ी समस्याओं से किसी द्वारा कही गई छोटी मोटी कड़वी बात या कटूक्ति या अपमानजनक टिप्पणी को उसकी तुलना में तुच्छ समझकर बर्दाश्त कर लेना चाहिये। ये सोचना चाहिये कि इससे भी अपमानजनक स्थिति आ सकती थी। ये तो कुछ भी नहीं है।

अब्दुल हमीद 'अदम' साहब का एक शेर है :

**जो लोग जान बूझ के नादान बन गए,
मेरा ख्याल है कि वो इंसान बन गए।**

घटनाओं और स्थितियों को नजरंदाज करना सीखें। आप अपने बच्चों की या अपने प्रियजनों की बड़ी से बड़ी गलती को नजरंदाज कर सकते हैं, उन्हें माफ़ कर सकते हैं तो अन्य लोगों की छोटी-मोटी गलती क्यों नहीं नजरंदाज कर सकते? इसमें आपका ही बड़प्पन है। सहनशील होने के साथ-साथ क्षमाशील होना भी एक बहुत बड़ा गुण है।

एक बात और। यदि पचास-सौ लोगों के बीच आपका बिना वजह अपमान किया जाता है अथवा मिथ्या दोषारोपण किया जाता है तो आपको इसका प्रतिवाद करने की जरूरत ही नहीं है। क्या उन सैकड़ों लोगों में से किसी न किसी को गलत बात या गलत बोलने वाले का खंडन नहीं करना चाहिये ? यदि नहीं तो फिर आपके अकेले चीखने-चिल्लाने से क्या हो जाएगा ? अतः धैर्य को ही अपना अस्त्र बना लीजिए। मानापमान वास्तव में एक विशुद्ध मानसिक अवस्था है। हमने अपनी एक काल्पनिक प्रतिमा (इमेज) बना रखी है। हमने ही ये तय कर रखा है कि कौन हमसे किस प्रकार का व्यवहार करे जो हमारे वश में नहीं। हम स्वयं को तो नियंत्रित कर सकते हैं लेकिन दूसरों को नहीं। जब भी कोई हमारी अपेक्षा के विरुद्ध व्यवहार करता है तो हमारी इस काल्पनिक प्रतिमा को ठेस पहुंचती है। हमने तो अपनी ये प्रतिमा इतनी नाजुक बना रखी है कि हाथ लगते ही मैली हो जाती है अथवा गिरकर

चकनाचूर हो जाती है। इस स्थिति से बचिये। अपनी प्रतिमा को स्थितियों के अनुसार परिवर्तित करते रहिये। दूसरों के व्यवहार को नियंत्रित करने की कोशिश मत कीजिए। किस-किस को बदलते फिरेंगे? स्वयं को ही बदल डालिये। छोटी-छोटी बातों पर व्यथित होना छोड़ा दीजिए। अपने दृष्टिकोण को बदल डालिये। धैर्य का दामन थामे रखिये। आप सारी धरती पर कालीन नहीं बिछवा सकते तो कोई बात नहीं लेकिन अपने लिए एक जोड़ी अच्छे से जूते तो खरीद ही सकते हैं ताकि चलते समय आपके पैर सुरक्षित रहें।

मानापमान पूर्णतः एक काल्पनिक स्थिति है। इसके प्रति निरपेक्ष होकर तथा अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करके सुखी-संतुष्ट जीवन जीने की ओर अग्रसर हो जाइये।

आप जैसा दिखना चाहते हैं,
उसके लिए कड़ी मेहनत करें।
तभी प्रतिष्ठा मिलेगी।

┌ ────────────────────┐

जो सबसे कम में संतुष्ट है,
वही असल में धनी है
क्योंकि संतुष्टि ही कुदरत की दौलत है।

┌ ────────────────────┐

ऐसी जिन्दगी बेमानी है,
जिसे इम्तिहान का सामना नहीं करना पड़ा हो।

┌ ────────────────────┐

मैं जानता हूँ कि मैं बुद्धिमान हूँ
क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता

श्रद्धांजलि

निष्काम सेवा एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित थे नाना जी



जन्म - 11-10-1916

निर्वाण - 27-2-2010

यू तो हमारा देश पुरातन काल से ही ऋषियों, मुनियों, मनीषियों, समाज सुध रकों व महापुरुषों का जनक रहा है जिन्होंने न सिर्फ भारत बल्कि पूरे विश्व का मार्गदर्शन कर जगत कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है किन्तु आधुनिक युग की बदलती हुई परिस्थितियों में ऐसे महापुरुष विरले ही हैं। महाराष्ट्र के परभणी जिले के एक छोटे से ग्राम कडोली में जन्मे चण्डिका दास अमृतराव देशमुख ने अपने बाल्यवस्था में शायद ही ऐसी कल्पना की होगी कि वह अपने जीवन काल में किये गये सेवा, संस्कार व शिक्षा के प्रसार के माध्यम से 50,000 से अधिक विद्यालयों की स्थापना, 500 से अधिक ग्रामों का विकास, भारतीय, राष्ट्र धर्म, पान्चजन्य व दैनिक स्वदेश का सम्पादन/प्रबन्धन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा पायेगा। भारत सरकार उन्हें पद्म विभूषण से सम्मानित कर राज्यसभा के लिए स्वतः मनोनीत करेगी यह तो सोचा ही कैसे जा सकता था।

अपने 94 वर्षों की लम्बी निष्काम सेवा ने उनका असली नाम चण्डिका दास अमृतराव देशमुख से नानाजी देशमुख रख दिया। निर्धनता के कारण सब्जी बेच किताबें जुटाकर पढ़ने वाले नानाजी देशमुख लोकमान्य तिलक के विचारों से बहुत प्रभावित थे। 1940 में उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धरण किया तथा आगरा से संघ प्रचारक के रूप में अपना समाज जीवन आरंभ किया। विषम आर्थिक परिस्थितियों व राजनैतिक विरोधों के बावजूद उन्होंने मात्र तीन वर्षों में गोरखपुर के आसपास 250 से अधिक संघ शाखाएं प्रारम्भ करवायी। शिक्षा की दुर्दशा को देखते हुए 1950 में गोरखपुर में ही उन्होंने पहला सरस्वती शिशु मन्दिर विद्यालय खुलवाया। संस्कारवान व राष्ट्रनिष्ठ नागरिक बनाने वाले ऐसे 50000 से अधिक विद्यालय आज देश के कोने-कोने में चल रहे हैं। राष्ट्रधर्म, पान्चजन्य व दैनिक स्वदेश जैसे विख्यात प्रकाशन नानाजी के मार्ग दर्शन की ही देन हैं। 1951 में जनसंघ की स्थापना के बाद नानाजी को उत्तर प्रदेश का प्रदेश संगठन मंत्री बनाया

गया जिन्होंने 1957 तक प्रदेश के सभी जिलों में जनसंघ का अलख जगाया। उत्तर प्रदेश की 412 सदस्यों वाली विधानसभा में जनसंघ के 99 विधायक चुनकर आये। डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के बलिदान के पश्चात् पंडित दीन दयाल उपाध्याय को जन संघ का अखिल भारतीय महामंत्री तथा नानाजी को अखिल भारतीय संगठन मंत्री बनाया गया। जहां एक ओर श्री बिनोवा भावे के भूदान आन्दोलन में उन्होंने बढ़-चढ़कर भाग लिया तो वहीं दूसरी ओर श्री जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन के दौरान पटना में अपने ऊपर लाठियां खाकर जय प्रकाश नारायण को बचाया। आपात काल में जयप्रकाश नारायण की गिरफ्तारी के उपरान्त वे प्रथम सत्याग्रही बने और देश भर के कार्यकर्ताओं का नेतृत्व करते रहे। 1977 में आपात काल समाप्ति पर देशभर की सरकारों में जनसंघ सहयोगी रहा तथा नानाजी को केन्द्र में उद्योग मंत्री बनाने का प्रस्ताव भेजा जिसे नाना जी ने सविनय टुकरा दिया। 60 वर्ष की आयु में राजनीति छोड़ उत्तर प्रदेश के गोण्डा जनपद में ग्राम विकास में जुटकर वे महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज के दर्शन को अमली जामा पहनाने वाले महामनीषी बने। प्रचार से दूर रहने वाले निष्काम कर्मयोगी द्वारा केवल गांवों की दशा सुधार कर उन्हें अपने बलबूते पर खड़कर आत्मनिर्भर बनाने के लिए जो कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये उन्होंने भारतीय जनमानस पर अमिट छाप छोड़ी। 2005 में प्रारम्भ किये गये चित्रकूट ग्रामोदय प्रकल्प ने चित्रकूट के आसपास 500 से अधिक ग्रामों को स्वाबलम्बी बना दिया तथा देश को पहला ग्रामोदय विश्वविद्यालय प्रदान किया। वे ग्राम विकास के सच्चे पुरोधा थे। सफल ग्रामोत्थान के इन्हीं प्रयोगों के लिए उन्हें पद्म विभूषण की उपाधि से विभूषित कर राजसभा के लिए भी मनोनीत किया गया। दीनदयाल शोध संस्थान नाना जी की कल्पना का ही एक साकार रूप है। लगभग एक शतक लम्बी राष्ट्र को समर्पित आयु के अन्तिम पड़ाव से पूर्व ही उन्होंने तय कर लिया था कि जब तक जीवित हैं तब तक स्वयं तथा मृत्यु के बाद उनकी देह राष्ट्र के काम आये। दिल्ली की दधीचि देहदान समिति को अपने देहदान सम्बन्धी शपथ पत्र पर हस्ताक्षर करते हुए नाना जी ने कहा था कि मैंने जीवन भर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखा में होने वाली दैनिक प्रार्थना में बोला है- 'पतत्वेष कायो, नमस्ते-नमस्ते' अर्थात् हे भारत माता मैं अपनी यह काया हंसते-हंसते तेरे ऊपर अर्पण कर दूँ। अतः मृत्योपरान्त उन्होंने न सिर्फ अपना देह दान कर चिकित्सा शास्त्र पढ़ने वाले युवकों के अध्यापन हेतु अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान को समर्पित करने का संकल्प किया बल्कि दस हजार रुपये की अग्रिम राशि भी समिति को दी जिससे देश के किसी भी भाग से उनका शान्त शरीर इस कार्य हेतु उचित स्थान पर लाया जा सके।

परिषद् परिवार की ओर से ऐसे महान तपस्वी को शत्-शत् नमन।

Sewa Samparjit

Ela Ramesh Bhatt



Ela Ramesh Bhatt is one of the world's most outstanding women working for the poor at the grassroots. She has dedicated her life to the cause of improving the lives of the poorest and most oppressed women workers of the country. She lives a simple life, usually dressed in a hand-spun cotton sari. Ela Bhatt is a Gandhian pragmatist for the New India.

Ela Bhatt was born in 1933 in Ahmedabad. The second of three daughters, Ela grew up in a well-to-do family deeply interested and active in social causes. She was greatly influenced by Mahatma Gandhi in her thinking. She studied law, taught English briefly at the University in Bombay, but teaching was not a profession which she found satisfying.

In 1955 she joined the legal department of the Textile Labour Association (TLA) in Ahmedabad - the city's main union for textile workers. For a while she held an assignment in the Labour Ministry of the Gujarat Government. In 1968, she was the chief of the women's section of the Textile Labour Association.

While working at the Textile Labour Association, she had first hand knowledge of the conditions suffered by poor self-employed women in the city. These women were engaged in variety of jobs such as weaving, stitching, rolling cigarettes, selling fruit & fish and vegetables and in road construction work. They were subjected to high rents for stalls or the tools of their trade. They also had to face routine exploitation or harassment by money-lenders, employers and officials. In Ahmedabad, majority of such workers lived in slums (97 per cent). Most of them were illiterate (93 per cent) and in debt. They were also forced to take some or all of their children with them to work.

Ela Bhatt realised that though thousands of women related to textile worker worked elsewhere to supplement the family income, there were state laws protecting only the industrial workers and not these self-employed women. So she undertook to organize these self-employed women into a union under the auspices of the Women's Wing of the TLA.

Later in 1972 the Self-Employed Women's Association (SEWA) was established. In a short time, it became the largest single union in the country. Through their organisation and solidarity, SEWA members have acquired a new negotiating power. They have established health, death and maternity benefit schemes to give them security. They have set up over 100 cooperatives of various trade groups to share skills and expertise, to develop new tools, designs and techniques and to engage in bulk buying and joint marketing. The cooperatives have an average of over 1,000 members each.

Their work in SEWA gave confidence to the women workers to establish their own bank in 1974. Thousands of women have been rescued from moneylenders and pawnbrokers. Apart from making it possible for members to obtain loans at low interest, the bank is encouraging savings and developing a sense of independence among the members. The bank is providing guidance for financial management, marketing of goods and purchase of necessary materials. Through its Mahila Trust, SEWA also provides education, legal services, and child-care facilities to the members.

With 5,00,000 members in Gujarat alone, the SEWA empire also includes two profit-making firms that stitch and embroider women's clothing. More than 100,000 women are enrolled in the organization's health and life insurance plans. Its bank has 350,000 depositors and, like most microfinance organizations, a repayment rate as high as 97 per cent.

SEWA is both an organisation and a movement. The SEWA movement is enhanced by its being a sangam or confluence of three movements: the labour movement, the cooperative movement and the women's movement.

Ela Bhatt has not limited her work to Ahmedabad but also taken the fight for recognition for self-employed women at the national and international levels. For her efforts she has received several awards, including the Ramon Magsaysay Award (1977), the Right Livelihood Award (1984) and she was included in the list of Global Elders (2007) announced by Nelson Mandela. She has also received honorary doctorates from Harvard, Yale, the University of Natal and other academic institutions.

Ela Bhatt was awarded Padma Shri in 1985, and the Padma

Bhushan in 1986. Ela Bhatt was nominated to the Rajya Sabha (1986-1989). She was also a member of the Planning Commission of India (1989-91) and has been chairperson and a founder member of Women's World Banking.

Through her work at SEWA, Ela Bhatt has shown that by organising themselves, the poor self-employed women can stand up and fight. They have ability to think, act, react, manage and lead towards the goal of self-reliance. As Ela Bhatt says, "Self-reliance is what they ultimately want. There is no development without self-reliance. But there is no route to self-reliance except by organisation."

- Atam Dev

**Always look at what has been left with you.
Never look at what you have lost.**

★ ★ ★

**Action may not always bring happiness, but
there is no happiness without action.**

★ ★ ★

**What lies behind us and what lies before us are
tiny matters compared to what lies within us.**

★ ★ ★

ONE WORLD

**The Dalai Lama tells you how to practise these
important human values for a more peaceful planet.**

FORGIVENESS

**Learn from mistakes - whether they are yours or
others - and try not to repeat them in the future.
Forgive yourself and others for the
mistakes they make.**

Seva Vs Service

The literal meaning of Seva and Service are the same but in practice there is a vast difference. Very often the persons and organisations giving service to the poor indulge in self-aggrandizement, publicity and pomp and show. They don't serve with a spirit of humility and want to intimidate and over awe the recipient with their wealth and knowledge.

Sathya Sai Baba of Puthaparthi delineates the difference clearly and asks us to do service in a spirit of Nar Seva Narain Seva.

Self-aggrandizement, competition or ostentation are motives that pollute the sacred spiritual practice of service. One who wishes to do spiritual service needs to overcome ego, exhibitionism and favouritism.

Before embarking on service project, ask yourself, is your heart full of selfless love, humility and compassion? In your head do you have an intelligent understanding and knowledge of the problem and its solution? Are your hands eager to offer the healing touch? And can you gladly spare and share time, energy and skill to help others in dire need?

These qualities take root and grow only when the idea of the 'Reality of Unitty' is implanted in our consciousness. Think of it this way. All living beings are cells in the body of God. Their origin, continued existence, and progress are all in, by and for God. The individual is a unit in this unity. When one is ill, all suffer. When one is happy, all are partners of that happiness. Faith in this truth is the fundamental equipment the sevak or volunteer must acquire.

In order to deserve the sacred name Seva, the activity must be freed from all attachment to the individual self and based on firm faith in the Divine resident in every being. Seva has to be considered as worshipping the form that God has assumed to give volunteers the chance of worship.

When a hungry nara or man is served a hearty meal, what is being done is Narayana Seva - serving the Supreme Lord, for nara is only 'a form and a name projected by maya or human ignorance. Do not allow

your service activities to turn into shops which concentrate on window dressing, in order to attract attention and patronage.

Before attempting to advice people who are less fortunate than you are, you must endeavour to advice yourself; before venturing to reform them, reform yourself. Avoid boasting before them about your superiority; it will hurt them and keep them away. Do not indulge in lectures. Action alone can inspire action. Example alone can instruct. Tall talk is a barren exercise.

An illiterate person need not be an ignorant person. He might be well aware of the ideals propounded by scriptures, saints and sages perhaps through oral tradition.

Today, we are confronted everywhere with statistics parading quantities and reports in glowing terms. Do not bother about adding to the number or achieving target; value quality, not quantity. Genuine and devoted service offered in a few places is more fruitful than superficial service offered to a large number.

Life cannot continue for long without others serving you and you serving others. Master-servant, ruler-ruled, guru-disciple, employer-employee, parents-children, all these are bound by mutual service. Every one is a sevak or servant.

Remember that the body, with its senses-mind-brain complex has been gifted to the highest path of devotion which wins the Grace of God. It promotes mental purity, diminishes egoism and enables one to experience, through sympathetic understanding, the unity of mankind.

Rejoice in what you have rather than complaining about what you do not have.

★ ★ ★

Our goal should not be only success, but success, and service.

★ ★ ★

Recognise others as brothers and sisters who have a right to overcome their prolems just like you do.

VIP Culture and India

- O.P. Sexena

India is the most populous democracy in the world with a written constitution which interestingly is the longest constitution ever adopted by any other democratic country. The preamble to the Constitution provides to the citizens equality of status and of opportunity besides justice-social, economic and political, liberty of thought, expression, belief, faith and worship and fraternity, assuring the dignity of the individual and the unity and integration of the nation. The Fundamental Rights along with the Directive Principles constitute the life force of the Constitution. The Supreme Court have observed that the Directive Principles are not mere pious declarations but are of vital importance to the country's future. The Country can live up to its dreams only when each and every citizen contributes towards making it. It is indeed a shocking admission that what to say of the Directive Principles the Fundamental Rights are yet to be guaranteed to every citizen even after 60 years of adoption and working of the constitution. Why we have failed is a serious question which calls for an in-depth probe. There may be several reasons for this dismal picture. The existence of VIP Syndrome in our polity can be safely said to be one of the factors responsible for the shoddy implementation of the constitution.

In our country some citizens are always more equal than others. Every second person considers himself / herself a VIP if not a VVIP. Dropping names, pulling strings, bribing authorities, using family connections etc. are not uncommon that we witness in our daily life. 'Don't you know who I am', an awful sentence seems to have captured the spirit of the country and even criminals exhibit it very often. It is the outcome of our feudalistic mindset, egoistic outlook and outdated class consciousness. This Indian malaise-VIP culture is a unique Indian phenomenon.

The most sad aspect of VIP culture is that it is being given undue recognition and importance and even encouraged by the government. Our netas are the new royals. They enjoy privileges at the expense of common man. The people are used to face jams, frayed tempers, boorish behavior, shrilling sirens whenever a VIP is on movement. Neither

the VIP nor the authorities entrusted with the security have any concern for the aam aadmi, a few of whom might be in a hurry to reach the hospital to avail medical aid in time. Only a few months back our humane Prime Minister offered apology to a patient's family whose patient was denied entry to the PGI Chandigarh, resulting in his death while the the PM was there on a visit. Many of such incidents go unnoticed. It is needless to emphasise that common man should not suffer due to VIP movement and the security agencies should be careful when sanitizing the route. The government appears to have finally waken up. The use of helicopter by the President of India, Vice President, Prime Minister and Home Minister for journeying in Delhi to attend a Delhi Police function is a welcome step and it signalled a paradigmatic change in the way VIPs move with in the city without disturbing the normal traffic.

In every walk of life VIPs distinguish themselves by claiming special treatment and privileges. During Kumbh Mela at Hardwar the authorities sanitized VIP Ghat about 50 meters up the river from common people for use by netas, governors and bureaucrats. Is it not a VIP route to salvation ? Not content with living in palatial heritage buildings in areas exempt from the daily drudgery of the aam aadmi; problems of bijli, Sadak paani, enjoying the red light atop their vehicles, their security and hangers on entourage they have ensured VIP send off to their mortal remains. The Delhi Development Authority is reported to have constructed three special VVIP pyres at the Nigambodh Ghat Cremation ground Delhi for cremation of VVIPs and VIPs.

Redressals of VIP complaints on priority is nothing unusual. Recently N.D.M.C. has launched an interactive voice response system (IVRS) under which complaints of VIPs will be looked into first and resolved in less time than complaints of other residents. These are few examples out of endless list of privileges that our netas seek and enjoy at the expense of aam aadmi.

VIP culture has engulfed with in its fold family members of VIPs, A few months back a U.P. MLA's son terrorised a city bar in Delhi by firing from his gun. This goes to show that the children of politicians are following the ways of their fathers. Exception apart, most politicians give their children a long rope and are quick to step in to shield them from punishments. Such attitude only produce more Manu Sharmas

and Vikas Yadavs The law must be allowed to take its course irrespective of who is in the dock.

The case of Manu Sharma is a classic example of executive indiscretion and favouritism, Being the son of an influential politician, the murderer of model Jessica Lal he succeeded in procuring parole order from the Delhi government in no time and that too by jumping the queue of prisoners awaiting decision on their parole applications. The way parole was granted to Sharma marks a mockery of justice. Demolishing the government claim that it went by the rulebook in granting parole to Sharma the Delhi High Court observed that there was no doubt that the administration had been selectively giving priority to the requests made by some convicts may be because of their high connection and influence. It is a glaring example as to how discretion is being used to favour someone who happens to be a son of a VIP. This is nothing but abuse of privilege, power and position.

The case of Ruchika Girhotra is another example where the former DGP SPS Rathore's crime goes way beyond molestation of Ruchika. He harassed her and her family with criminal intimidation. He drove her to commit suicide. Commenting on the award of punishment the chief justice of India said that the 19 year long trial in Ruchika Molestation case that ended with a light punishment for Rathore was a classic example of the powerful and influential exploiting legal loopholes to their advantage. We are aware that Rathore and persons like him are part of a system, a system that is rotten to the core. We need a system that can safeguard the rights of all those protected by the law, no matter who they are.

Another case of executive indiscretion worth mentioning is the remittance and pardon granted by the governor of Andhra Pradesh to double murder accused Venkete Reddy sentenced to life term just because he was MLA of the ruling party and had good connections with political big wigs.

VIP syndrome is so ingrained in our country that every next person expects, rather demands special and preferential treatment. In today's critical time enforcement of security measures and frisking of air passengers at airport is a routine affair. Each country has the right to enforce its own security measures after 9/11 terror attack. U.S. stepped up its security measures. Common citizens of India visiting US have

gone along without any murmuring. It is only some VIPs have given vent to their feelings by equating their so called dishonor with national disgrace. When actor Shah Rukh Khan initially expressed outrage on being interrogated at a US airport, he symbolized the VIP culture. This let loose a volley of quivering fury from our VIPs. Earlier the former president of India APJ Abdul Kalam was frisked by an American airline staff. He followed the procedure without any fuss. Earlier the then Lok Sabha Speaker Som Nath Chatterji cancelled his trip to Australia when told that he would not be exempt from security check. A system is a system. We may not like it but we have to submit to it. This simple fact eludes us, when the then Minister of State for External Affairs threw himself in a fit or rage on having to undergo security checks while boarding a flight in New Delhi. A craven government instead of pulling him up quickly amended the rules where by all the Ministers of State are now exempt from security checks. It is high time that these arbitrary exemptions are scrapped without any further delay and one rule for all is enforced regardless of status and position.

VIP culture is unique phenomena in our country. It is absent in western and other countries. There the people including VIPs stick, to rules be it security checks, observing traffic rules, forming queues etc. The rules are so strict that any violation entails harsh punishment which may vary from fine to jail term. There the police is respected and is not amenable to manipulations.

It is a tragedy that even as our nation enters the 21st century our maharajas are obsessed with vestiges of 19th century. Every VIP seems to have threat to his/her life. They are vying with each other in demanding a higher security umbrella. Even VIPs who face no threat to their life are having minimal security of four PSO's round the clock. It has become a status symbol.

It is pertinent to raise a moot point as to why our law makers be exempt from security checks, why should the ever lengthening list of VIPs feel that their self respect is at stake when asked to follow rules and why should our post independence ruling maharajas nurse a feudal mindset and demand different treatment. It is imperative we take a hard relook at our security apparatus. We should adopt the US security pattern with a heavy dose of no-nonsense professionalism. Can we do away with unnecessary privileges for politicians, bureaucrats and others ?

The Gita as I Understand It

- Shashi Bhushan Rath

As a Child

It looked like a kind of story-telling while on a journey! I read with interest this conversational literature, but hardly could I grasp the meaning. It made me think as to who is an ideal man, the vastness of creation. I was inquisitive to ponder about the origin of self, others around me and the world. I never got all the question answered, but with those questions in my mind I grew.

As a Youth

As a student of science, I realised poetry and mythology have preceded philosophy and science. Man understands, but is condemned to follow a path of paradox-there is rebirth as well as shraddha for the ancestors. Omnipresence is far as well as near, depending on the state of our mind. Omniscient is formless and has form.

I found out the Gita comprises 18 chapters and a total of 700 hymns (slokas). Broadly there are 3 sections viz, action-centred (karma), knowledge centred (jnana) and devotion-centered (bhakti). I understood these stood for the three stages of life-youth, middle age and the ripe age, respectively.

The guiding principal of youth was karma: do only the work that must be done. I knew Kurukshetra was a place in Haryana where no war is fought today, but it took time for me to realise it is also within me. War and conflict are not only the universal principles of our life, but also of our mental and moral existence. No real step forward can be made without a struggle-a battle between 'what is' and 'what to be'. Whenever there is conflict in my being, I discovered the interplay of the three fundamental forces within me: sattwa (equilibrium), raja (activity) and tama (inertness). Sattwas lead to happiness, rajas to action and tamas to negligence (xiv, 9)

Life is not measured in the length of years and months, but in its quality, like fire is measured in its brief brilliance and heat, not by its lingering smoke. The spirit of a person is always shining within him. Once he realises his unity with the universe, he becomes one and indistinguishable. Each breath is a life. Every breath made me conscious of

the active spirit in me. "Like pearls of a necklace held together by a thread, so are everything in the universe supported and held together" (vii, 7)

I learnt that to control the mind is difficult, but not impossible. Uddharetat manata manam: with the help of the mind itself, the mind has to be purified. With one part of the mind, the other has to be controlled. It is possible by abhyasa (practice) and vairagya (dispassion). They are not separate, but complementary to each other (vi, 35).

As a Middle-aged

The Gita is a teacher that changes the meaning of life and death completely. As a youth I learnt what pravrtti (impulsion) was and how rajasic it was, also of apravrtti (inertia) and how tamasic it was. As a middle aged person I could understand what was prakash (enlightenment) and its sattwic nature, and about aprakash (absence of light) and its tamasic nature. It grooms the mind spiritually. Spiritually disposed mind breaks the barrier of senses, and touches the inner reality.

Whenever there are questions like: 'Who am I? Am I only a skeletal structure wrapped around by a bagful of flesh?', the answer is the ultimate is in me, within me and I am That. From the state of elevated mind, a life of perfect surrender and non-attachment emerges. The inner life of man must possess perfect tranquility-complete freedom from passion and passionate desires to realise the deepest delight, the bliss (ananda). This tranquility should not be misunderstood as indolence, inertia, inactivity, incapacity, insensibility. It is capable of all action and full of immortal power.

During serious crises, there might arise the tendency to run away from life, evade challenging problems that appear insoluble. But that is no solution. These crises cannot be solved by escaping or bypassing or fleeing from life's challenging situations; they can be truly resolved facing life, by rising to a higher consciousness in and through all the situations. "Your nature shall appoint you to your innate disposition, your temperament will impel you into strife" (xviii, 59). There is a deeper law of being and living.

As a Critic

The Gita has inner dimensions which are spiritual, secular, social, moral and practical. It is a handbook of practical living, as Sri Aurobindo says, "To be free from repulsion and desire; to do work for Him without

the demand for fruit; to renounce self-will and become a passive and faithful instrument in his hands; to have equal heart for high and low, friend and opponent, success and failure".

It has a vision, a dynamic consciousness, and a thought; it is ever fresh, always renewable in experience. It is an inexhaustible treasure trove, ever new for the seekers. It gives peace and solace and takes away the turmoil and grief. It is not only academic and philosophical, but also has immediate use in human living and thinking. It has the power of shaping your through process. It is the truth of the spirit which has clues for an effective life and teaches the art of living. It has truth of vision and truth of substance.

And Hereafter

Childhood was ignorance, youth was action, middle age was knowledge and hereinafter will be devotion. The Gita gives sustenance to thought and in turn thought to life. 'He, who sees the inaction that is in action, is wise indeed. Even when he is engaged in action, he remains poised in the tranquility of Atman (iv, 18)'.

Duryodhan had learnt the shastras but did not know how to apply them to life situations. Arjuna was haunted by an ill-digested knowledge. Having a cosmic vision of the world spirit (Vishwarupadarshana) made Arjuna understand the meaning of Jivanmukta (supreme realisation) in this mundane life itself. The cosmic being is immeasurable without end or middle or beginning. He is the creator and the destroyer. He is time, and death. He destroys to create and he creates to destroy, time eating up the lives of creatures. He is cosmic as well as microscopic, and manifests simultaneously. He is bountiful and prodigal. He is helpful, strong and a benign preserver. He is also the devourer and destroyer.

The Gita gives two mantras for constant repetition: Om (chapter viii) and Om Tat Sat (chapter xvii). It urges repeatedly to live in this world like the lotus-leaf which is unaffected by water (padmapatramivabhasa). There is a consummate invitation to the human to belong entirely to the divine so that his mind enters into the divine (xviii, 63-64).

True knowledge is not possible without an elevated state of mind during which man is at one with the universal mind. Unless man completely purges himself of all traces of dogma, superstitions and prejudices, any effort to understand the nature of the Truth must inevitably fail. □

Dementia

What does it mean when someone is said to have dementia? For some at least, the word conjures up scary images of 'crazy' behaviour and loss of control in daily activities. Dr Hema Pai tries to set the record right.

Dementia is derived from the phrase 'De-mentia', which means loss of mental power. It is a progressive brain disease which gradually impairs a person's ability to remember, recall, think, act and function adequately. It affects the person's social and occupational functioning. Brain changes are evident as shrinking of brain volume due to degeneration of brain cells.

Normal people, aged 60 plus, do have minor changes in their ability to remember, but this does not cause significant problems in their daily activities. But people with dementia slowly lose their ability to function independently and over a time, require assistance and care even for basic functions like eating, washing, dressing and so on.

Types of Dementia

Alzheimer's: This is the commonest type of dementia, with 35 to 50 per cent suffering from Alzheimer's, and found more in women than men. This condition often starts with memory disturbances, and later encompasses language, comprehension, identifying and recognising places and persons. Daily functions are slowly affected and over a time, the person becomes totally dependent on others for all personal activities and care.

Vascular or Multi-facet dementia: This develops due to various causes which affect the blood supply to the brain. People with hypertension, diabetes, high cholesterol, high triglycerides and stroke may have small repeated bleeding in the brain leading to the degeneration of brain matter and dementia. Vascular dementia is seen in 10 to 30 per cent of the cases. More men are affected by this than women.

Parkinsonian dementia: Here the affected person has features of dementia and also displays Parkinsonian features of tremors at rest, gait difficulties and rigidity.

Fronto-Temporal dementia: This starts with personality changes such as impaired social interaction, disinhibition, repetitive behaviours, behavioural disturbances and decreased speech ability. This group comprises 5 to 7 per cent of the cases with dementia. Gradually, memory and other intellectual abilities are affected.

Some Common Signs

It should be understood that in the early stages, recent memory power is lost while the person remembers things from the past quite well. There are dementias that are reversible, such as those caused due to nutritional deficiencies and endocrinal abnormalities. Attention needs to be paid when personality changes, or difficulty in remembering are observed in the elderly. Keep an eye on whether he or she :

- asks questions repeatedly despite understanding the answer provided.
- has difficulty performing familiar tasks - initially in subtle ways like, unable to wear a saree
- has problems with language - may forget simple words or use the wrong words.
- misplaces things - can't find them later.
- has time and place disorientation-loses way in familiar places or forgets.
- confuses months, days and dates.
- is unable to carry out daily routine-neglects safety, hygiene and nutrition.
- shows personality changes, like a very quiet person becoming aggressive, with mood swings.
- loss of initiative-may become passive.

Early recognition and timely treatment could go a long way in decreasing the burden of this disease in the patients as well as on their caregivers.

Possible to Prevent ?

- Keeping yourself intellectually, socially and physically active are important preventive measures, as is a healthy diet.
- Blood pressure should be rigidly controlled and so should levels of cholesterol. □

Men and Matters

- Jogender Singh

The key to a successful and happy life is never to lose hope, become skilful in whatever you do and to avoid negative thoughts. Moreover backbiting and hurting others feelings will not only vitiate your friendship but also degrade you in the eyes of the person to whom you are talking.

Our heart heals faster when there is hope. Hope is like a band aid. It facilitates the repair of any damage and enables any shock or set back to heal more rapidly. Never lose hope even in the worst of circumstances. Keep in view, what you were meant to do with your life and how best you can use yourself. Always have an high opinion of yourself and keep your spirit free. Keep your honour intact under all circumstances. Said Samuel Johnson; "What we hope ever to do with ease, we must learn first, to do with diligence." Remember that success does not come overnight. You have to badly want, to achieve your goal, by putting in the necessary time and effort. Success demands a heavy price and there is no such things as instant success, just because you want it right now and here. You have to be fair to your dream, and give it your all.

Become skilled at what you want to do and have to do. Then do the best you can. Once you realise this, it will make it easy for you, to realise your dream. Says Francis Wayland "It is by what we ourselves have done, and not by what others have done for us, that we shall be remembered after the ages". Focus on living a life of consequence and significance. Honour your principles, standards and ethics and be known as a person of immeasurable integrity, strength, and character. Have a way of life with values, which mirrors these qualities.

Regulate and fine tune into the way you feel about your life. Barzun's Laws of Learning says that "The simple but difficult arts of paying attention, copying accurately, following an argument, detecting an ambiguity or a false inference, testing guesses by summoning up contrary instances, organizing one's time and one's thought for study-all these arts-cannot be taught in the air, but only through the difficulties of a defined subject. They cannot be taught in one course or one year, but must be acquired gradually in dozens of connections. The analogy to athletics must be pressed, until all recognize that in the exercise of intellect, those who lack the muscles, co-ordination, and will power can

claim no place at the training table, let alone on the playing field.

" As a measure to enhance your self-esteem, never gossip about other people, in demeaning terms. If you are doing so, then you need to change, your own self-beliefs and behaviour. This is the only way, to have the friendship and intimacy that you need in your life. Avoiding harbouring hard feelings towards the people, who have offended you is difficult. Attempt to replace this behaviour with a more positive one, such as saying only good and pleasant things, behind other people's backs. This is a habit, which can be cultivated.

It is an ungentlemanly quality to stoop to gossiping and griping about others, when they are not present. The real integrity in your relationship, demands that you be even handed and not a backbiter. While it is normal not to like someone, due to personality clash or personal egos, it is not acceptable to rubbish others or use every opportunity to paint others, as rogues and felons. The best policy is that, if you have nothing nice, to say about someone or to someone, then by all means keep your mouth shut.

Hurting someone, because you have authority, or some control, or are aware of other's weak points, would certainly not make you, or show that you are a better person. Others who hear your denunciations, would feel that you are small, mean, and a petty individual. No Matter how much aversion you have for someone, do not tumble down so low, that you behave without esteem, reverence or scruples. Remember, when we deliberately cause hurt to others, we hurt ourselves most of all.

All of us need, to make a special effort, to ignore the easy way of bad-mouthing others. When you feel tempted, ask yourself as to why you are doing it. Keep in view, that condemnation or bad mouthing others, will not change them or anything else. The person criticised would still be the same person. Possibly he may harden his stand, in whatever he is doing. The only thing is, you will have only made yourself look and feel insignificant and trivial in the eyes of others. Tearing any body does not build the stature of the critic. On the other hand, it can show, that such a person is, full of jealousy, envy, resentment, anger, hatred, or fear.

It is within the power, of each one of us, not to behave that way. We can avoid emotional poison generated by the negative behaviour. The secret to long-lasting, positive, and fulfilling relationships is based on feeling secure in yourself. Make sure that your whole being gives a positive reflection of yourself at your best.

पत्र जगत्

प्रिय सम्पादक जी,

ज्ञान प्रभा का 16वाँ अंक देखने को मिला। इस अंक में चीन पर विशेष सामग्री दी गई है। हिन्दी एवं अंग्रेजी में दी गई सामग्री अत्यंत सामयिक एवं जानकारी से परिपूर्ण है। ये दोनों देश यदि प्रतिद्वन्दी एवं शत्रु के स्थान पर सहयोगी एवं मित्र बन सकें तो समस्त एशिया में सुख एवं शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है।

अप्रैल के प्रथम सप्ताह में भारत के विदेश मंत्री एस.एम. कृष्णा भारतीय चीन संबंधों के 60 वर्ष पूर्ण होने के उपलब्ध में आयोजित समारोह में शिरकत करने पेड़चिंग गये थे। इस अवसर पर चीन के सरकारी अखबार चायना टूडे ने एक सौहार्द पूर्ण सम्पादकीय लिखा था। अखबार लिखता है:-

“सोमनहल्ली मल्लैया कृष्णा की पेड़चिंग यात्रा दोनों देश के अधिकारियों के लिए परस्पर वार्ता, विश्वास निर्माण और सहयोग स्थापना के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। भारत के साथ अपने संबंधों को चीन अपने सबसे महत्वपूर्ण द्विपक्षीय संबंधों में से एक मानता है। पिछले 60 वर्षों में संसार के सर्वाधिक जनसंख्या वाले इन दोनों देशों के रिश्तों में हुई बढ़ोतरी ने इनके बीच दीर्घकालीन रणनीतिक भागीदारी की संभावनाएं पैदा कर दी हैं। ये दोनों विकासशील किन्तु उदीयमान देश पूरी भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था के पुनर्जीवन के लिए आशा के केन्द्र माने जा रहे हैं। व्यापार के क्षेत्र में इनके बीच सहयोग बढ़ना इन दोनों पड़ोसियों के लिए फायदेमंद साबित होगा और इससे दुनियां में इन दोनों की आर्थिक धाक भी बढ़ेगी। दो महत्वपूर्ण क्षेत्रीय शक्तियों के रूप में चीन और भारत के साझा हित इसी में हैं कि इस क्षेत्र का विकास हो और इसमें स्थिरता बनी रहे। पर्यावरण में आ रहे बदलाव और ऊर्जा सुरक्षा से जुड़ी भूमण्डलीय चुनौतियों के मामले में भी दोनों देश के हित एक जैसे हैं। क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मामलों में परस्पर सहयोग के जरिए ये दोनों देश अपने हितों की रक्षा कर सकते हैं और इससे समूची विकासशील दुनियां को भी काफी फायदा होगा। चीन और भारत से पूरी दुनियां को यही अपेक्षा है कि भविष्य में वे और भी बड़ी भूमिका निभाने के लिए तैयार रहें।”

भारत जैसे देश में किसी समाचार पत्र के सम्पादकीय को बहुत अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता लेकिन चीन में प्रिन्ट मीडिया स्वतंत्र नहीं है। विशेष रूप से चायना टूडे जैसा सरकारी अखबार वहां की सरकारी सोच एवं नीति को दर्शाता करता है यह मानना अनुचित नहीं होगा।

अतः भारत एवं चीन भविष्य में एक जुट होकर विश्व की शान्ति एवं समृद्धि के लिए कार्य करेंगे ऐसी आशा करनी चाहिए।

-विश्वनाथ प्रसाद, पटना (बिहार)

Letter to the Editor

Chinese Bubble May Burst

Dear Sir,

I went through the latest issue of *Gyan Prabha*. The articles in this small magazine are really readable. They contain a variety of knowledge scarcely available in any of other magazine and in one place. Although the proof reading and designing of the magazine requires a lot of improvement.

I shall like to comment on the internal problems of China. According to some economists China is in the middle of the greatest bubble in history which may burst at any time. The country has misallocated its wealth on a massive scale. The government has raised bank's reserve requirements twice in the current year after economic growth accelerated and property prices recovered temporarily.

China has pegged the Yuan to the Dollar since July 2008 to help exporters to weather the global recession. The Central Bank of China buys dollars and sells its own currency to prevent the Yuan strengthening, driving foreign exchange reserves to a world record 2.4 trillion dollars till the end of 2009.

The property rates in China, specially in Shanghai, have sky rocketed due to excessive loans granted at cheap rates. The World Bank has indicated that China should raise interest rates to help contain the risk of a property bubble burst. It should also stop supporting Yuan and keep it cheap artificially.

Otherwise, Chinese economy is in the midst of a bubble which is waiting to burst.

R. Shetty
Mumbai

Tolerance

You can't always agree or get along with everyone. But your future is with these people. So develop a sense of caring, tolerance, or compassion for everyone, even those you don't get along with.

Contentment

It's mistake to place all our hopes for happiness on material gains. So be satisfied with whatever you have, and you will have more inner peace.

इस अंक में.....

अपनी बात		1
Editor's Reflections		4
Holy Wisdom		6
स्वयं सेवी संस्थाएँ- उद्भव एवं विकास	आर. के. श्रीवास्तव	7
एन.जी.ओ. बनाम “स्वयं सेवी संगठन”	किशोर अग्रवाल	15
NGOs - Role of Leadership and Professionalism	Atam Dev	18
Challenges Before NGOs in 21st century	Suresh Chandra	24
भारत के भविष्य निर्माण में स्वाभिमानी इतिहास की भूमिका	नीलम खरे	29
व्यक्तित्व के चार सोपान	संकलित	33
भारतीय शिक्षा का स्वर्णिम अतीत	हृदयनारायण दीक्षित	38
वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत	वरदान अग्रवाल	42
जीवन का आरंभ, मध्य तथा अंतिम भाग	डा0 उषा खोसला (यू.एस.ए.)	46
भारतीय शिक्षा के मूलतत्त्व	गोविन्द प्रसाद शर्मा	49

लोभ है समस्या : संतोष है समाधान	आचार्य महाप्रज्ञ	57
‘मानापमान का स्वरूप तथा उपचार’	सीता राम गुप्ता	62
निष्काम सेवा एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित थे नाना जी	श्रद्धांजलि	66
Sewa Samparjit Ela Ramesh Bhatt		68
Sewa vs Service		71
VIP Culture and India	O.P. Sexena	73
The Gita as I Understand it	Shashi Bhushan Rath	77
Dementia		80
Men and Matters	Joginder Singh	82
पत्र-जगत्		84

Life Expectancy vs. Health Expectancy

-B. M. Hegde

Modern hi-tech medicine claims that it has increased human life expectancy. In fact, the life expectancy started increasing with better food supply, and better education of the masses making them live a healthier life.

In developing countries, life expectancy could have a quantum jump if only infant mortality comes down.

Life expectancy is a statistical term, which does not mean that human life span has increased in this century due to all the hi-tech stuff that we are trying to sell to the gullible public !

On the contrary, life span has come down from the usual 120-140 years that some of the aboriginal races in certain pockets of the world still enjoy. It is now estimated that the average American life expectancy cannot go beyond 89 years even in the next millennium.

If a mother gives birth to ten children and if eight of them die around birth, as used to happen in many poor nations, even if the other two children live up to 100 years, the life expectancy of another child being born to any mother in similar setting would be only twenty years (100 multiplied by 2 and divided by 10). This could change dramatically if instead of eight children dying around birth, only four die and the rest live for 100 years, the life expectancy in that setting would jump to 60 years!

Now one can understand the meaning of the word life expectancy. The change in life expectancy, therefore, has very little to do with the so-called hi-tech curative medicine.

The maximum number of years any species could live is called life span. This is fixed as early as the day one is made in the mother's womb, in the genetic material. This cannot and would not change with even the highest tech. efforts.

The Hayflick's rule gives each cell its maximum capacity to reproduce and apoptosis tells the cells when to die (in certain cells like the heart muscle cell there is no apoptosis under normal circumstances).

Recent efforts to increase the life span by genetic engineering also have come to naught, as senescence could not be halted in those modified cells.

It is no use having a 150-years old very senile vegetable in society. Life span has remained the same since the dawn of the human race.

Health expectancy is the time interval between birth and the end of healthy

life-before the onset of any major incapacitating illness. Man is healthy only when he is creative in society. Absence of physical illness is not the complete definition of health.

In fact, many people with physical diseases are more creative, and consequently healthier, than their counterparts in society without any physical disease, but having no enthusiasm.

Thus defined, health becomes a very useful commodity in society. In fact, healthy people in society could even make society more more tranquil.

थिंक टैंक

महान दार्शनिक सुकरात का जन्म 469 ई.पू. एथेंस के एक गरीब परिवार में हुआ था। वह पूरी जिन्दगी रूढ़ियों के विरोध और ज्ञान के प्रसार में जुटे रहे। बाद में शिष्यों ने सुकरात की शिक्षाओं को किताब आदि का रूप दिया। उनके सबसे चर्चित शिष्य थे प्लैटो, जो बाद में अरस्तू के गुरु बनें। इन तीनों ने पश्चिमी दर्शन गढ़ने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रूढ़ियों के खिलाफ आवाज उठाने और नास्तिक होने के आरोप में सुकरात को जहर का प्याला पीने का आदेश दिया गया, जिसे उन्होंने खुशी-खुशी पी लिया।

मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता

- कमल मालवीय

हमारे जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं जब हमारा अपना दुःख दूसरे के दुःख के आगे बौना लगता है। वह मनुष्य जो आर्थिक तंगी के कारण जूता तक नहीं खरीद पाता परन्तु जब उसकी दृष्टि पैर विहीन व्यक्ति पर पड़ती है तब उसे यह अहसास होता है कि उसका दुःख तो उस अपंग के आगे कुछ भी नहीं है।

आज अधिकतर लोग अपनी तुलना दूसरे व्यक्ति से कर अपनी ही स्थिति पर आंसू बहाया करते हैं, कुछ ऐसे हैं जो अन्य कारणों से भाग्य को कोसते हैं। कोई इस बात से परेशान है कि उसे अच्छी नौकरी नहीं मिली, तो कोई अच्छी पत्नी न मिलने से कुंठित है। किसी-किसी को तो यह बात कचोटती है कि उसके बच्चे इतने प्रतिभावान एवं सुन्दर नहीं हैं जितने उनके रिश्तेदारों के हैं। ऐसे लोगों को यह अहसास होता है कि यदि उन्हें मनचाही नौकरी मिल जाती, या उनके बच्चे प्रतिभावान होते तो उनके सभी दुःखों, समस्याओं का अन्त हो जाता।

मनुष्य जीवन भर अपनी इच्छाओं, कामनाओं के पीछे भागता रहता है। जीवन में कुछ इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है तो वह फूला नहीं समाता किन्तु इसके तुरन्त बाद दूसरी इच्छा पैदा होती है। जब हमारी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती है तब हम अपने भाग्य को कोसते हैं और ईश्वर को अन्यायी तक कहने में संकोच नहीं करते। इच्छाएँ अनन्त हैं, वे धारावाहिक रूप से एक-एक करके आती हैं। एक इच्छा पूर्ति के बाद दूसरी का उद्गम प्रारम्भ हो जाता है।

अपने आस-पास नज़र दौड़ाएँ तो ऐसे चन्द लोग ही मिलेंगे जो अपने जीवन से संतुष्ट और सुखी हैं एवं जिनके लिये कहा जा सकता कि उन्हें वह सब कुछ मिल गया जो वे चाहते थे।

असल में हमारा यह सुख हमारे नज़रिये पर निर्भर करता है। यदि हम इस सत्य को स्वीकार कर लें कि जीवन में सभी को सब कुछ नहीं मिलता तो यह कुंठा समाप्त हो जायेगी। यह जरूरी नहीं है कि सब कुछ मिल जाने पर भी हम चैन की सांस ले सकेंगे और सारी उलझनें दूर हो जाएँगी।

समाचार पत्रों में ऐसे छात्रों की उपलब्धियों के विषय में पढ़ने को मिलता है जिन्होंने हाथ से अपंग होने पर भी हिम्मत नहीं हारी। अपने पैरों के बीच में कलम फंसाकर लिखने का अभ्यास करके शिक्षा प्राप्त करने वालों में कई शोध छात्र भी हैं। हमें उनसे सीख लेनी चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति को सुविधाओं और साधनों से सम्पन्न होने के लिए प्रयास रत होना चाहिए परन्तु अपनी सीमाओं, मर्यादाओं का ध्यान रखकर। यदि आप को पैसों का अभाव है तो सही तरीके से अर्थोपार्जन के उपाय खोज लें। परमात्मा ने जो रूप रंग आपको दिया है उसमें आप निखार तो ला सकते हैं परन्तु उसे बदल नहीं सकते।

मनुष्य सांसारिक सुख प्राप्ति के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है। इस हेतु वह सदा कामना करता रहता है। वह इस बात को नहीं जानता कि सुख स्वरूप तो वह स्वयं है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि रजोगुण से उत्पन्न इन कामनाओं की पूर्ति कभी नहीं होती। भगवान कहते हैं कि मन में हिलोरे लेने वाली कामना यदि पूरी हो जाएँ तो राग उत्पन्न हो जाता है और इसकी पूर्ति न होने पर मन में क्रोध का जन्म होता है। सभी इच्छाओं की पूर्ति कभी नहीं हो पाती जबकि इन इच्छाओं की पूर्ति में मनुष्य सारा जीवन लगा देता है।

अपनी क्षमताओं का सर्वोत्तम उपयोग करें, क्षमताओं को पहचान कर उनका विकास करना आप की प्राथमिकताओं में होना चाहिए। स्वयं को व्यस्त रखें ताकि आप के मन में निरर्थक विचार पैदा न होने पाएँ। अपने लक्ष्य, अपनी मंजिल पर ध्यान केंद्रित कर अग्रसर हों, इसी से आत्म तुष्टि प्राप्त होगी।

“कभी किसी को मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता” शायर की ये पंक्तियाँ आप ने अवश्य सुनी होंगी। इस कथन में हकीकत और सच्चाई है, इसलिए जीवन में सम्पूर्णता की तलाश वहीं तक करें जहाँ तक संभव और व्यावहारिक हो। आप के पास बहुत कुछ ऐसा हो सकता है जो दूसरो के पास न हो।

संतोष स्वाभाविक धन है एवं सच्चे सुख का साधन है।

- तथागत

अगर आप अच्छा बनना चाहते हैं तो सबसे पहले खुद की कमियों को कबूल करें।

हम जो बदल सकते हैं, उसे बदलें और जो नहीं बदल सकते, उसे लेकर परेशान या दुखी न हों। जो है, उसी में क्या बेस्ट कर सकते हैं, यह सोचें और करें।

भगवन ने हमें दो कान और एक मुंह दिया है ताकि हम जितना बोलें, उससे दोगुना सुन सकें।

लोग किसी घटना या चीज से नहीं, बल्कि इस बात से दुखी होते हैं कि वे उस घटना या चीज को किस तरह लेते हैं। सुखी होने के लिए घटना के प्रति सही नजरिया जरूरी है।

कोई भी महान चीज अचानक तैयार नहीं होती। उसे इसके लिए लंबी प्रक्रिया से गुजरना होता है।

आपके अंदर जो कुछ है, उसका बेहतरीन इस्तेमाल करें और बाकी चीजों को वैसे ही स्वीकार करें, जैसी वे हैं। बाहर के हालात को कोसना बंद करें।

वह शख्स बुद्धिमान है, जो उन चीजों के लिए नहीं रोता जो उसके पास नहीं हैं, बल्कि जो हैं, उनका भरपूर लुफ लेता है।

खुश रहना है जो जिन बातों पर अपना वश न हो, उनके बारे में डरना और फिक्रमंद होना छोड़ दें। किसी को दोस्त बनाने में थोड़ा वक्त लें लेकिन एक बार दोस्ती करने के बाद हमेशा के लिए मजबूती से उसका हाथ थामे रखें।

आप जैसा दिखना चाहते हैं, उसके लिए कड़ी मेहनत करें। तभी प्रतिष्ठा मिलेगी।

जो सबसे कम में संतुष्ट है, वही असल में धनी है क्योंकि संतुष्टि ही कुदरत की दौलत है।

ऐसी जिंदगी बेमानी है, जिसे इम्तिहान का सामना नहीं करना पड़ा हो।

मैं जानता हूँ कि मैं बुद्धिमान हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता।

Let speakers finish Interrupting is the most common listening offence.

Asking too many questions irriatates the speaker.

Don't multitaks You miss info if you read or type during a chat, and you may offend the sepaker. If busy, ask if you can talk latter and set a time to do so.

Follow up If you don't let people know the outcome of their ideas, they feel they weren't heard and that they didn't offer something of value. People offer more ideas if they feel sure they'll hear back.

Rejoice is what you have rether than complaiassing about what you do not have.

Our goal should not be only success, but success and service.

God creats opportunities but expects us to search for them.

Reactive mind isttell responsive mind is heaven.

To know and not act on what you know is equal to not kissowing.

दुनिया में दुख है। दुखों की कोई-न-कोई वजह है। दुखों का निवारण मुमकिन है।

दुखों की मूल वजह अज्ञान है। अज्ञान के कारण इंसान की मोह-माया और तृष्णा में फंसा रहता है।

अज्ञान से छुटकारा पाने के लिए अष्टांग मार्ग का पालन है: १. सही समझ, २. सही विचार, ३. सही वाणी, ४. सही कार्य, ५. सही आजीविका, ६. सही प्रयास, ७. सही सजगता और ८. सही एकाग्रता।

इस ब्रह्माण्ड को चलाने वाला कोई नहीं है और न ही कोई बनाने वाला है।

साधना के जरिए सर्वोच्च सिद्ध अवस्था को पाया जा सकता है। यही अवस्था बुद्ध कहलाती है और

इसे कोई भी पा सकता है।

न तो ईश्वर है और न ही आत्मा। जिसे लोग आत्मा समझते हैं, वह चेतना का प्रवाह है।

भगवान और भाग्यवाद कोरी कल्पना है, जो हमें जिंदगी की सचाई और असलियत से अलग कर दूसरे पर निर्भर बनाती है।

पांचों इंद्रियों की मदद से जो ज्ञान मिलता है, उसे आत्मा मान लिया जाता है। असल में बुद्धि ही जानती है कि क्या है और क्या नहीं। बुद्धि का होना ही सत्य है। बुद्धि से ही यह समस्त संसार प्रकाशवान हैं।

मरने के बाद चेतना महा सुषुप्ति में सो जाती है। वह लंबे समय तक पड़ी रह सकती है या फौरन दूसरा जन्म लेकर संसार चक्र में फिर से शरीक हो सकती है।

न यज्ञ से कुछ होता है और न ही धार्मिक किताबों को पढ़ने मात्र से। धर्म की किताबों को गलती से परे मानना नासमझी है। पूजा-पाठ से पाप नहीं धुलते।

जैसा मैं हूँ, वैसे ही दूसरा प्राणी है, इसलिए किसी को मारो न मारने की इजाजत दो।

हम महान व्यक्तियों के निकट पहुंच जाते हैं जब हम नम्रता में महान हो जाते हैं।

दरिद्र कौन है ? भारी तृष्णा वाला। और धनवान कौन है ? जिसे पूर्ण संतोष है।

Move out of your comfort Zone. You can only grow if you are willing to feel awkward and uncomfortable when you try something new.